वैश्वीकरण की समझ
(UNDERSTANDING GLOBALISATION)

बी.ए. (प्रोग्राम) राजनीति विज्ञान

सेमेस्टर –VII

DISCIPLINE SPECIFIC ELECTIVE (DSE)

कोर्स क्रेडिट -4

As per the UGCF - 2022 and National Education Policy 2020

READING NOTES

विषय सूची

क्र. सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
इकाई-I	**वैश्वीकरण**	1-11
	(क) अर्थ तथा विमर्श (ख) आयाम — आर्थिक, राजनीतिक, प्रौद्योगिकीय, भाषिक तथा सांस्कृतिक	
इकाई-II	**समकालीन विश्व के प्रमुख अभिकर्ता**	12-28
इकाई-III	**समकालीन वैश्विक मुद्दे**	29-44
इकाई-IV	**क्षेत्रीय संगठन**	45-61

Printed at: Vikas Publishing House Pvt. Ltd. Plot 20/4, Site-IV, Industrial Area Sahibabad, Ghaziabad - 201 010 (1500 Copies) October 2026

(क) अर्थ तथा विमर्श
(ख) आयाम — आर्थिक, राजनीतिक, प्रौद्योगिकीय, भाषिक तथा सांस्कृतिक

संरचना

1.1 अधिगम उद्देश्य

1.2 वैश्वीकरण का अर्थ तथा उस पर विमर्श

1.2.1 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

1.2.2 अर्थ तथा मूल विशेषताएँ

1.2.3 प्रमुख सैद्धान्तिक विमर्श

1.3 आयाम — आर्थिक, राजनीतिक, प्रौद्योगिकीय, भाषिक तथा सांस्कृतिक

1.3.1 आर्थिक आयाम — बाज़ार, उत्पादन तथा असमानता

1.3.2 राजनीतिक आयाम — वैश्विक शासन तथा राज्य

1.3.3 प्रौद्योगिकीय आयाम — डिजिटल क्रान्ति

1.3.4 भाषिक तथा सांस्कृतिक आयाम — वैश्विक युग में पहचान

1.3.5 आयामों का परस्पर सम्बन्ध

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्न

(अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ब) निबन्धात्मक / दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1.7 सन्दर्भ सूची

1.1 अधिगम उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम होंगे–

1. वैश्वीकरण की अवधारणा को परिभाषित एवं स्पष्ट करते हुए उससे सम्बन्धित प्रमुख विद्वत्-विमर्शों की रूपरेखा प्रस्तुत करना।
2. वैश्विक पारस्परिक सम्बन्धों के ऐतिहासिक विकास तथा उनके सामाजिक-आर्थिक प्रभावों को समझना।

3. वैश्वीकरण के प्रमुख आर्थिक, राजनीतिक, प्रौद्योगिकीय, भाषिक तथा सांस्कृतिक आयामों का विश्लेषण करना।
4. अतिवैश्वीकरण, संशयवाद तथा रूपान्तरणवाद जैसी विचारधाराओं का समालोचनात्मक मूल्यांकन करना।
5. यह आकलन करना कि वैश्वीकरण शासन-व्यवस्था, असमानता, प्रौद्योगिकी तथा पहचान को किस प्रकार प्रभावित करता है।
6. वैश्विक परिवर्तन की प्रक्रियाओं के भीतर वैश्विक दक्षिण—विशेषतः भारत—की स्थिति का विवेचन कीजिए।

1.2 वैश्वीकरण का अर्थ एवं उससे संबंधित विमर्श

वैश्वीकरण आधुनिक सामाजिक विज्ञान तथा सार्वजनिक विमर्श की सर्वाधिक चर्चित और विवादास्पद अवधारणाओं में से एक है। अपने मूल स्वरूप में यह विश्व के विभिन्न समाजों, अर्थव्यवस्थाओं और संस्कृतियों के बीच पूँजी, वस्तुओं, सेवाओं, सूचनाओं, प्रौद्योगिकी तथा मानव संसाधन के निरंतर बढ़ते आदान-प्रदान के माध्यम से परस्पर जुड़ाव की प्रक्रिया को व्यक्त करता है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से इस परस्पर संपर्क की गति अत्यधिक तीव्र हुई है, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न समुदाय अभूतपूर्व रूप से एक-दूसरे के निकट आए हैं। विद्वान डेविड हेल्ड तथा एंथनी मैकग्रू ने इसे समय और स्थान के अभूतपूर्व संकुचन की संज्ञा दी है। इन परिवर्तनों का प्रभाव मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। हम क्या खाते हैं, कौन-सी तकनीकों का उपयोग करते हैं, कौन-सी भाषाएँ बोलते हैं तथा जिन राजनीतिक संस्थाओं द्वारा हमारा शासन संचालित होता है—इन सभी पर वैश्वीकरण का प्रभाव पड़ता है। यद्यपि वैश्वीकरण सर्वत्र विद्यमान है, फिर भी इसकी उत्पत्ति, स्वरूप, लाभ तथा परिणामों को लेकर विद्वानों में व्यापक मतभेद हैं। कुछ विद्वान इसे वैश्विक प्रगति तथा वैज्ञानिक-प्रौद्योगिकीय नवाचार का स्वाभाविक और अनिवार्य परिणाम मानते हैं, जबकि अन्य इसे ऐसी वैचारिक परियोजना के रूप में देखते हैं, जो पूँजीवादी संबंधों तथा पाश्चात्य प्रभुत्व को नए रूपों में विस्तारित करती है। इन सभी विचार-विमर्शों से यह स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण कोई एकरेखीय प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में एक साथ घटित होने वाला जटिल और बहुआयामी परिवर्तन है। इसकी इस बहुआयामी प्रकृति को समझना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि इससे यह स्पष्ट होता है कि स्थानीय अनुभव निरंतर वैश्विक शक्तियों से प्रभावित हो रहे हैं तथा स्थानीय व्यवहार और परंपराएँ भी वैश्विक व्यवस्थाओं को निरंतर नया स्वरूप प्रदान कर रही है।

1.2.1 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

सामान्यतः वैश्वीकरण को डिजिटल प्रौद्योगिकी तथा नवउदारवादी आर्थिक सुधारों से जुड़ी आधुनिक घटना माना जाता है, किंतु इसकी ऐतिहासिक जड़ें अत्यंत प्राचीन और गहरी हैं। मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही विभिन्न क्षेत्रों के बीच निरंतर संपर्क और आदान-प्रदान होता रहा है। स्थल मार्ग से संचालित रेशम मार्ग, जिसने चीन, भारत, फारस तथा यूरोप को जोड़ा, तथा हिन्द महासागर और भूमध्यसागर के समुद्री व्यापारिक मार्ग वैश्विक संपर्क के प्रारंभिक स्वरूपों के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन मार्गों से केवल रेशम, मसाले और धातुओं जैसी वस्तुओं का ही नहीं, बल्कि विचारों, धर्मों तथा वैज्ञानिक ज्ञान का भी व्यापक आदान-प्रदान हुआ, जिससे आधुनिक राष्ट्र-राज्यों के उदय से बहुत पहले ही व्यापक सांस्कृतिक संवाद स्थापित हो चुका था। पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में समुद्री अन्वेषण के युग के साथ यूरोपीय साम्राज्यवादी विस्तार प्रारंभ हुआ। उपनिवेशवाद, वाणिज्यवाद तथा लाखों अफ्रीकियों की दासता सहित विशाल जनसमूहों के जबरन विस्थापन पर आधारित एक नई विश्व-व्यवस्था का निर्माण हुआ। इसी

काल में आधुनिक वैश्विक व्यवस्था की भौतिक तथा वैचारिक नींव रखी गई, जिसने औद्योगिक तथा उत्तर-औपनिवेशिक युग तक सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को बनाए रखा। उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगीकरण, तार-संचार, भाप से चलने वाले जलयानों तथा वैश्विक वित्तीय व्यवस्था के विस्तार ने विश्वव्यापी संपर्क को और अधिक सुदृढ़ किया। श्रम तथा पूँजी का महाद्वीपों के बीच अभूतपूर्व स्तर पर आवागमन होने लगा। 1945 के बाद संयुक्त राष्ट्र, ब्रेटन वुड्स व्यवस्था तथा उपनिवेशवाद से मुक्ति के आंदोलनों के माध्यम से वैश्विक सहयोग की नई संस्थागत संरचना विकसित हुई, जिसने अंतरराष्ट्रीय संपर्कों और सहयोग के दायरे का व्यापक विस्तार किया। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में सूचना क्रांति, व्यापार के उदारीकरण तथा बहुराष्ट्रीय निगमों के विस्तार ने विश्व के दूरस्थ क्षेत्रों को भी वैश्विक बाज़ारों से जोड़ दिया। वैश्वीकरण का यह समकालीन चरण तीव्र प्रौद्योगिकीय विकास और डिजिटल तात्कालिकता से परिभाषित होता है, जिसने विश्वव्यापी संपर्क और संवाद को पहले की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्र, व्यापक और सहज बना दिया।

1.2.2 अर्थ तथा प्रमुख विशेषताएँ

वैश्वीकरण की सटीक परिभाषा करना कठिन है, क्योंकि इसका प्रभाव आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, तकनीकी तथा पर्यावरणीय क्षेत्रों तक विस्तृत है। फिर भी अधिकांश विद्वानों का मत है कि इसके कुछ मूलभूत सिद्धांत समान हैं। मैनफ्रेड बी. स्टेगर के अनुसार, वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें परस्पर जुड़े हुए प्रवाह तीव्र गति से विस्तृत होते हैं तथा व्यक्तियों और संस्थाओं को पारंपरिक भौगोलिक सीमाओं से परे जोड़ते हैं। आर्थिक प्रवाह में अंतरराष्ट्रीय व्यापार, विदेशी निवेश, बहुराष्ट्रीय उत्पादन तथा श्रम और पूँजी का आवागमन सम्मिलित है। राजनीतिक प्रवाह में शासन-व्यवस्था, कूटनीति तथा निर्णय-निर्माण की उन प्रक्रियाओं का विकास शामिल है, जो राष्ट्रीय सीमाओं के ऊपर और नीचे दोनों स्तरों पर कार्य करती हैं। इनमें अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ, नगरों के नेटवर्क तथा गैर-सरकारी संगठन भी सम्मिलित हैं। सांस्कृतिक प्रवाह के अंतर्गत विचारों, सूचनाओं, संचार माध्यमों तथा जीवन-शैलियों का वैश्विक स्तर पर प्रसार होता है, जो लोगों के मूल्यों और उपभोग की प्रवृत्तियों को प्रभावित करता है। तकनीकी प्रवाह नवाचारों, संचार प्रणालियों तथा वैज्ञानिक अनुसंधान के सीमाओं से परे प्रसार का प्रतिनिधित्व करता है। पर्यावरणीय प्रवाह में पारिस्थितिक तंत्र, प्रदूषकों तथा जलवायु परिवर्तन के वैश्विक प्रभाव सम्मिलित हैं, जो समस्त मानवता को उसकी साझा पर्यावरणीय नियति का बोध कराते हैं। ये सभी परस्पर जुड़े हुए प्रवाह संसार को एक ओर छोटा और दूसरी ओर अधिक जटिल बनाते हैं। छोटा इसलिए कि संचार और व्यापार अत्यंत तीव्र गति से होने लगे हैं, तथा अधिक जटिल इसलिए कि असमानताएँ और संवेदनशीलताएँ अब एक-दूसरे से गहराई से जुड़ चुकी हैं। वैश्वीकरण की प्रमुख विशेषताओं में समय और स्थान का तीव्र संकुचन, वैश्विक बाज़ारों तथा आपूर्ति-श्रृंखलाओं का विकास, प्रौद्योगिकी का व्यापक प्रसार, वैश्विक शासन-व्यवस्था का विस्तार तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान की वृद्धि सम्मिलित हैं। इन सबके परिणामस्वरूप मानवीय संपर्क का एक ऐसा साझा वैश्विक क्षेत्र निर्मित होता है, जिसमें स्थानीय और वैश्विक प्रक्रियाएँ निरंतर एक-दूसरे से जुड़ी रहती हैं।

1.2.3 प्रमुख सैद्धांतिक विमर्श

वैश्वीकरण के संबंध में विभिन्न विचारधाराओं और शैक्षणिक दृष्टिकोणों के आधार पर अनेक प्रकार की व्याख्याएँ प्रस्तुत की गई हैं। अतिवैश्वीकरण के समर्थक विद्वानों, जैसे केनिची ओहमे तथा थॉमस फ्राइडमैन, का मत है कि वैश्वीकरण ने एक ऐसे नए ऐतिहासिक युग का आरंभ किया है, जिसमें राष्ट्रीय सीमाओं का महत्व निरंतर घटता जा रहा है तथा बाज़ार की शक्तियाँ विश्व अर्थव्यवस्था को एक अखंड इकाई में परिवर्तित कर रही हैं।उनके अनुसार वैश्विक पूँजी, बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा त्वरित वित्तीय प्रवाह के कारण राष्ट्र-राज्य की शक्ति लगातार कम होती जा रही है। उनके मत में वैश्वीकरण एक अपरिवर्तनीय प्रक्रिया है, जो प्रौद्योगिकी के विकास तथा उदार आर्थिक सिद्धांतों

के आधार पर सीमाहीन और विश्वनागरिक व्यवस्था की ओर अग्रसर है। इसके विपरीत, संशयवादी विद्वान, जैसे पॉल हर्स्ट तथा ग्राहम थॉम्पसन, वैश्वीकरण की नवीनता और उसके वास्तविक विस्तार—दोनों पर प्रश्न उठाते हैं। उनका तर्क है कि जिसे वैश्विक कहा जाता है, उसका अधिकांश भाग वास्तव में उत्तर अमेरिका, यूरोपीय संघ तथा पूर्वी एशिया जैसे क्षेत्रीय व्यापारिक समूहों तक ही सीमित है।उनके अनुसार उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में भी अंतरराष्ट्रीय आर्थिक एकीकरण, प्रवासन तथा पूँजी के प्रवाह का स्तर आज के समान, बल्कि अनेक दृष्टियों से उससे भी अधिक था। इसलिए उनके मत में वैश्विक दबावों के बावजूद राष्ट्र-राज्य ही राजनीतिक अधिकार का मूल आधार बना हुआ है तथा वह आर्थिक और सामाजिक जीवन को प्रभावी रूप से नियंत्रित करने में आज भी सक्षम है। रूपांतरणवादी विचारधारा के विद्वान, जिनका प्रतिनिधित्व डेविड हेल्ड और एंथनी मैकग्रू करते हैं, वैश्वीकरण को ऐतिहासिक दृष्टि से अभूतपूर्व, किंतु अनिश्चित प्रक्रिया मानते हैं। उनके अनुसार वैश्वीकरण केवल राज्य की शक्ति को कम या अधिक नहीं करता, बल्कि राज्य की शक्ति का पुनर्गठन करता है, जिससे बहुस्तरीय शासन तथा पारस्परिक निर्भरता के नए स्वरूप विकसित होते हैं। इस प्रकार वैश्वीकरण परिवर्तनकारी है, परन्तु पूर्व निर्धारित नहीं; इसमें प्रगतिशील तथा प्रतिगामी दोनों प्रकार की संभावनाएँ निहित हैं।समालोचनात्मक तथा उपनिवेशोत्तर विचारधारा के विद्वान, जिनमें जॉन बेलिस, पैट्रिशिया ओवेन्स तथा एंड्रयू हेवुड प्रमुख हैं, वैश्वीकरण को साम्राज्यवाद तथा पूँजीवाद के दीर्घकालिक विकासक्रम के संदर्भ में रखकर इसकी अधिक गहन व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। उनका मत है कि वैश्विक व्यवस्था, सार्वभौमिकता के दावों के बावजूद, वैश्विक उत्तर और वैश्विक दक्षिण के मध्य गहरी असमानताओं पर आधारित है। आर्थिक उदारीकरण तथा उपभोक्ता संस्कृति का प्रसार प्रायः उपनिवेशवादी शासनकाल में स्थापित निर्भरता के प्रतिरूपों को पुनः उत्पन्न करता है, जिससे व्यापार तथा प्रतिनिधित्व में असमान परिस्थितियाँ बनी रहती हैं। इस दृष्टिकोण से वैश्वीकरण केवल आर्थिक अथवा प्रौद्योगिकीय घटना नहीं, बल्कि एक राजनीतिक परियोजना भी है, जिसके माध्यम से प्रभावशाली शक्तियाँ अपना प्रभाव तथा विचारधारा विस्तारित करती हैं।

इन समस्त विचारों से स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण कोई एक रूप घटना नहीं है, बल्कि परस्पर सम्बद्ध प्रक्रियाओं का ऐसा समूह है, जो शक्ति, उत्पादन तथा संस्कृति के संबंधों को रूपांतरित करता है। यह विकास, नवाचार तथा अंतरसांस्कृतिक समझ के अवसर प्रदान करता है, किन्तु साथ ही असमानता, पर्यावरणीय क्षरण तथा सामाजिक विखंडन को भी बढ़ाता है। इन अंतर्विरोधों का अध्ययन करने से यह समझने में सहायता मिलती है कि वैश्वीकरण आर्थिक, राजनीतिक, प्रौद्योगिकीय, भाषायी तथा सांस्कृतिक आयामों के माध्यम से किस प्रकार विकसित होता है, जिनका विस्तारपूर्वक विवेचन अगले अनुभाग में किया गया है।

1.3 आयाम — आर्थिक, राजनीतिक, तकनीकी, भाषाई तथा सांस्कृतिक

वैश्वीकरण परस्पर सम्बद्ध आयामों के माध्यम से प्रकट होता है, जो आर्थिक, राजनीतिक, प्रौद्योगिकीय, भाषायी तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में व्याप्त हैं। प्रत्येक आयाम यह निर्धारित करता है कि समाज किस प्रकार परस्पर संपर्क स्थापित करते हैं, शक्ति तथा संसाधनों का वितरण कैसे होता है, और सामूहिक पहचान का निर्माण किस प्रकार होता है। समग्र रूप से ये प्रक्रियाएँ स्पष्ट करती हैं कि वैश्वीकरण न तो पूर्णतः एकीकरणकारी है और न ही पूर्णतः विखंडनकारी; बल्कि यह एक ओर विभिन्न क्षेत्रों को परस्पर जोड़ता है, तो दूसरी ओर संपत्ति, अवसर तथा प्रभाव की असमानताओं को उजागर करने के साथ-साथ उन्हें और अधिक गहरा भी करता है। इन विविध आयामों की समझ यह स्पष्ट करती है कि कुछ राष्ट्र तथा समुदाय वैश्विक व्यवस्था से अपेक्षाकृत अधिक लाभ प्राप्त करते हैं, जबकि अन्य उसी व्यवस्था के कारण हाशिये पर चले जाते हैं अथवा अधिक असुरक्षित बन जाते हैं।

1.3.1 आर्थिक आयाम — बाज़ार, उत्पादन तथा असमानता

वैश्वीकरण का आर्थिक आयाम वैश्विक पारस्परिक निर्भरता की सबसे स्पष्ट तथा मापी जा सकने वाली अभिव्यक्ति है। उन्नीस सौ सत्तर के दशक से व्यापार उदारीकरण, वित्तीय विनियमन में शिथिलता तथा सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने वैश्विक अर्थव्यवस्था को उत्पादन तथा विनिमय की एक परस्पर सम्बद्ध व्यवस्था में रूपांतरित कर दिया है। आज विनिर्माण कार्य विभिन्न महाद्वीपों में इस प्रकार विभाजित है कि उत्पाद की रूपरेखा, संयोजन तथा विपणन अलग-अलग स्थानों पर तुलनात्मक लाभ तथा लागत दक्षता के आधार पर सम्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, किसी दूरभाष यंत्र की परिकल्पना कैलिफ़ोर्निया में की जा सकती है, उसके अवयव दक्षिण कोरिया तथा ताइवान में निर्मित हो सकते हैं, उसका संयोजन चीन में किया जा सकता है, और अंततः उसका विपणन विश्व के प्रमुख क्षेत्रों में किया जा सकता है। उत्पादन की इस भौगोलिक विभाजित व्यवस्था ने आर्थिक जीवन में राष्ट्रीय सीमाओं को धुंधला कर दिया है, इस परस्पर निर्भरता को सुदृढ़ बनाने में आर्थिक वैश्वीकरण के प्रमुख संस्थानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इनमें विश्व व्यापार संगठन, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक प्रमुख हैं। ये संस्थान वस्तुओं, पूँजी तथा नीतिगत विचारों के अंतरराष्ट्रीय प्रवाह के लिए नियमगत और संस्थागत आधार प्रदान करते हैं।

उदाहरणस्वरूप, विश्व व्यापार संगठन शुल्कों तथा व्यापारिक बाधाओं को कम करने को प्रोत्साहित करता है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष वित्तीय सहायता प्रदान करता है तथा व्यापक आर्थिक व्यवस्था की निगरानी करता है। विश्व बैंक विकास परियोजनाओं और आधारभूत संरचना के निर्माण के लिए वित्त उपलब्ध कराता है। संयुक्त रूप से ये संस्थान निजीकरण, राजकोषीय अनुशासन तथा मुक्त व्यापार जैसे नवउदारवादी सिद्धान्तों के अनुरूप बाज़ारोन्मुख सुधारों और आर्थिक समन्वय को बढ़ावा देते हैं। किन्तु आलोचकों का मत है कि इन व्यवस्थाओं के साथ लगाए जाने वाले अनेक प्रतिबंध विकासशील देशों की घरेलू नीतिगत स्वायत्तता को सीमित कर देते हैं, जिससे विकसित और विकासशील देशों के बीच असमानता बनी रहती है। यद्यपि वैश्विक आर्थिक एकीकरण ने आर्थिक वृद्धि को गति दी है, उपभोक्ताओं के विकल्पों का विस्तार किया है तथा नवाचार को प्रोत्साहित किया है, फिर भी इसके लाभ देशों के भीतर और देशों के बीच समान रूप से वितरित नहीं हुए हैं। संपत्ति का संकेंद्रण कुछ क्षेत्रों और बहुराष्ट्रीय अभिजात वर्ग तक सीमित होता जा रहा है, जबकि अनेक विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ अभी भी प्राथमिक वस्तुओं के निर्यात तथा अस्थिर श्रम बाज़ारों पर निर्भर हैं।

सन् 2008 के वैश्विक वित्तीय संकट ने अनियंत्रित पूँजी बाज़ारों की संरचनात्मक कमजोरियों को उजागर किया तथा यह स्पष्ट कर दिया कि वैश्विक परस्पर जुड़ाव अवसरों के साथ-साथ अस्थिरता को भी अत्यन्त तीव्र गति से फैलाता है। आर्थिक पुनरुत्थान के समय भी आय की बढ़ती असमानता, निम्न वर्गों के लिए स्थिर वेतन तथा पर्यावरणीय क्षरण ने वैश्विक पूँजीवाद के प्रति आशावाद को सीमित किया है। ये विरोधाभास इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि वैश्विक अर्थव्यवस्था का विस्तार अनेक बार रोजगार की असुरक्षा तथा निर्धनता की निरंतरता के साथ-साथ चलता है। इसी समय चीन, भारत, ब्राज़ील तथा दक्षिण अफ्रीका जैसी उभरती हुई अर्थव्यवस्थाएँ वैश्विक उत्पादन तंत्र के महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गई हैं, जिससे आर्थिक शक्ति का क्रमिक किन्तु असमान पुनर्वितरण दिखाई देता है। डिजिटल मंचों, विद्युत वाणिज्य तथा वित्तीय प्रौद्योगिकी में नवाचारों ने उपभोग और निवेश की प्रवृत्तियों में व्यापक परिवर्तन किया है तथा समाजों को वैश्विक बाज़ार व्यवस्था से और अधिक गहराई से जोड़ दिया है। फिर भी न्यायसंगत तथा सतत विकास आज भी एक स्थायी चुनौती बना हुआ है। यदि निष्पक्ष व्यापार सुनिश्चित करने, वित्तीय व्यवस्था को उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से नियंत्रित करने तथा पर्यावरण और श्रमिकों के मानकों की रक्षा करने के प्रभावी उपाय नहीं किए गए, तो आर्थिक वैश्वीकरण असमानता और पर्यावरणीय संकट को कम करने के स्थान पर उन्हें और अधिक बढ़ा सकता है। अतः राज्यों तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं का दायित्व है कि वे वैश्विक बाज़ारों की समन्वयकारी

क्षमता का सदुपयोग करें, उनके लाभों का अधिक समावेशी वितरण सुनिश्चित करें तथा भविष्य के संकटों के विरुद्ध समाज की सामर्थ्य को सुदृढ़ बनाएँ।

1.3.2 राजनीतिक आयाम — वैश्विक शासन और राज्य

वैश्वीकरण का राजनीतिक आयाम उस परिवर्तन पर केंद्रित है, जिसके कारण शक्ति, अधिकार तथा शासन की प्रकृति बदल रही है। आज जलवायु परिवर्तन, आतंकवाद, प्रवासन, महामारी तथा वित्तीय अस्थिरता जैसी समस्याएँ राष्ट्रीय सीमाओं से परे पहुँच चुकी हैं। इसलिए कोई भी एकमात्र राज्य इनका प्रभावी समाधान अकेले नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप, वैश्वीकरण ने घरेलू और विदेश नीति के पारंपरिक विभाजन को धुंधला कर दिया है तथा राज्यों को परस्पर सहयोग और समन्वय के साथ कार्य करने के लिए बाध्य किया है। घनिष्ठ रूप से परस्पर जुड़े सहयोग तथा विनियमन के जालों के भीतर यह प्रक्रिया संचालित होती है। कुछ विद्वानों का मत है कि इससे राष्ट्र की प्रभुसत्ता का क्षरण हुआ है, क्योंकि अन्तरराष्ट्रीय वित्त, व्यापारिक समझौतों तथा सीमापार मानकों की आवश्यकताओं के कारण शासन की नीतिगत स्वतंत्रता दुर्बल हुई है। इसके विपरीत अन्य विद्वानों का कहना है कि राज्य लुप्त नहीं हुआ है, बल्कि उसने अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं, क्षेत्रीय संघों तथा अशासकीय पक्षों के साथ नवीन सहभागिता स्थापित करके अपनी सत्ता को नए रूप में व्यवस्थित किया है। इस दृष्टि से वैश्वीकरण राज्य का अंत नहीं करता, बल्कि उसके अधिकार-प्रयोग की पद्धति को परिवर्तित कर देता है।

इसी प्रक्रिया से वह व्यवस्था विकसित हुई है जिसे सामान्यतः वैश्विक शासन कहा जाता है। यह नियमों, संस्थाओं तथा निर्णय-निर्धारण की प्रक्रियाओं की एक जटिल व्यवस्था है, जो राष्ट्रीय सीमाओं के पार आचरण का समन्वय करती है। इसका उदाहरण संयुक्त राष्ट्र जैसे संस्थानों के कार्यों में दिखाई देता है, जो शांति स्थापना तथा मानवीय सहयोग के लिए वैश्विक मंच प्रदान करते हैं; विश्व व्यापार संगठन, जो व्यापारिक विवादों के समाधान तथा शुल्कों में कमी का नियमन करता है; तथा जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र रूपरेखा अभिसमय, जो वैश्विक तापवृद्धि के समाधान हेतु सामूहिक प्रयासों को प्रोत्साहित करता है। इन अंतरशासकीय संस्थाओं के साथ-साथ अनेक सीमापार व्यवस्थाएँ भी कार्यरत हैं, जिनमें यूरोपीय संघ तथा दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्रों का संगठन जैसे क्षेत्रीय संघ, तथा अशासकीय संस्थाओं और बहुराष्ट्रीय व्यापारिक प्रतिष्ठानों के माध्यम से कार्य करने वाले विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों और जनहित समर्थकों के जाल सम्मिलित हैं। इन अशासकीय पक्षों की भागीदारी यह संकेत देती है कि अब अधिकार केवल शासन के हाथों में केंद्रित नहीं रहा, बल्कि वैश्विक स्तर से स्थानीय स्तर तक अनेक पक्षों के बीच विभाजित होकर संचालित हो रहा है।

किन्तु वैश्विक शासन का उदय वैधता तथा जनतांत्रिक उत्तरदायित्व से जुड़े गंभीर प्रश्न भी उत्पन्न करता है। यद्यपि अंतरराष्ट्रीय व्यवस्थाएँ कार्यकुशलता तथा नीतिगत समन्वय को सुदृढ़ बनाती हैं, फिर भी वे प्रायः प्रत्यक्ष जन-निगरानी की सीमा से बाहर कार्य करती हैं, जिसके कारण अनेक आलोचक इसे जनतांत्रिक न्यूनता कहते हैं। जटिल संधि-वार्ताएँ तथा विशेषज्ञ-प्रधान निर्णय-निर्धारण की प्रक्रियाएँ प्रायः शक्तिशाली राष्ट्रों और बड़े व्यापारिक हितों को अधिक महत्व देती हैं, जिससे अपेक्षाकृत दुर्बल समाजों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता। इसलिए प्रभावी बहुपक्षीय सहयोग और जनतांत्रिक उत्तरदायित्व के मध्य संतुलन स्थापित करना हमारे समय की प्रमुख मानकगत चुनौतियों में से एक बन गया है। सुधार संबंधी प्रस्तावों में अधिक पारदर्शिता लाना, नागरिक समाज की भागीदारी का विस्तार करना तथा वैश्विक संस्थाओं की उत्तरदायित्व व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना सम्मिलित है। जैसे-जैसे वैश्विक शासन विकसित होता जाएगा, वैसे-वैसे यह निर्धारित होगा कि राष्ट्र अंतरराष्ट्रीय सहयोग बनाए रखते हुए अपने नागरिकों की रक्षा कितनी प्रभावी ढंग से कर पाते हैं और वैश्वीकरण सामूहिक कल्याण को बढ़ावा देता है अथवा वैश्विक असमानताओं को और अधिक गहरा करता है।

1.3.3 तकनीकी आयाम – डिजिटल क्रान्ति

प्रौद्योगिकी वैश्वीकरण की प्रेरक शक्ति भी है और उसका प्रमुख प्रतीक भी। इसने समय और दूरी को अत्यन्त सीमित कर सम्पूर्ण विश्व को संचार तथा सूचना के एक साझा क्षेत्र में जोड़ दिया है। अंतर्जाल और उपग्रह संचार के आविष्कार से लेकर कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा विशाल आँकड़ा विश्लेषण के विकास तक, नवाचारों ने समाजों के उत्पादन, विनिमय तथा ज्ञान-अर्जन की प्रक्रियाओं को मूल रूप से परिवर्तित कर दिया है। इन परिवर्तनों ने परस्पर जुड़े हुए डिजिटल अर्थतंत्र को जन्म दिया है, जिसमें सूचना, पूँजी तथा विचार तत्काल प्रवाहित होते हैं और व्यापार, शिक्षा तथा सामाजिक संपर्क के नए रूपों को संभव बनाते हैं। इसके परिणामस्वरूप विकसित संजाल समाज ने परम्परागत सत्ता-संरचनाओं को चुनौती दी है, क्योंकि इसने व्यक्तियों तथा संस्थाओं को शासन की प्रत्यक्ष मध्यस्थता के बिना ही राष्ट्रीय सीमाओं के पार समन्वय स्थापित करने की क्षमता प्रदान की है।

शिक्षा तथा वैश्विक स्वतंत्र कार्य-बाज़ारों तक। इस प्रकार प्रौद्योगिकी एक महान समन्वयक के रूप में कार्य करती है, जो वैश्वीकरण की पहुँच को दैनिक जीवन तक विस्तृत करती है तथा कार्य, संचार और शासन की प्रकृति को परिवर्तित करती है।विद्वान वर्तमान युग को प्रायः चौथी औद्योगिक क्रान्ति के रूप में वर्णित करते हैं, जिसमें कृत्रिम बुद्धिमत्ता, यंत्रमानविकी, जैव-प्रौद्योगिकी, सूक्ष्म-प्रौद्योगिकी तथा आँकड़ा-विश्लेषण के अभिसरण पर विशेष बल दिया जाता है। ये नवाचार कार्यों के स्वचालन, रसद-प्रणालियों के अनुकूलन तथा विशाल मात्रा में आँकड़ों के सृजन के माध्यम से उत्पादन और श्रम की कार्यप्रणाली को पुनर्गठित कर रहे हैं, जो विभिन्न क्षेत्रों में निर्णय-निर्माण को प्रभावित करते हैं। यद्यपि ये सृजनशीलता, उत्पादकता तथा वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए नए अवसर प्रदान करते हैं, तथापि रोजगार में कमी, निजता तथा निगरानी को लेकर चिंताएँ भी उत्पन्न करते हैं। राज्य संस्थाओं तथा निजी निगमों द्वारा व्यक्तिगत आँकड़ों का संग्रह और उनका वाणिज्यिक उपयोग डिजिटल युग में शक्ति के एक नए आयाम का प्रतिनिधित्व करता है, जिसके लिए नवाचार और अधिकार-सुरक्षा के मध्य संतुलन स्थापित करने वाली सावधानीपूर्ण व्यवस्था आवश्यक है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, साइबर सुरक्षा तथा आनुवंशिक अभियांत्रिकी से संबंधित नैतिक मानदण्ड आने वाले दशकों में तकनीकी वैश्वीकरण की दिशा और स्वरूप को निरन्तर निर्धारित करेंगे।इन प्रौद्योगिकियों की परिवर्तनकारी संभावनाओं के बावजूद, इन तक पहुँच आज भी अत्यन्त असमान बनी हुई है। डिजिटल विभाजन—अर्थात् उन लोगों के बीच का अंतर जो सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी से लाभान्वित हो सकते हैं और जो नहीं हो सकते—वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक असमानताओं को प्रतिबिम्बित ही नहीं करता, बल्कि अनेक बार उन्हें और अधिक सुदृढ़ भी करता है। वैश्विक दक्षिण के अनेक देशों में आज भी डिजिटल अवसंरचना, वहनीयता तथा शिक्षा से संबंधित गंभीर कमियाँ विद्यमान हैं, जिसके कारण वे ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था में पूर्ण सहभागिता से वंचित रह जाते हैं। इस विभाजन को समाप्त करने के लिए ऐसी समावेशी डिजिटल नीतियों की आवश्यकता है जो मुक्त प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहित करें, व्यापक संचार-सुविधाओं में निवेश बढ़ाएँ तथा डिजिटल साक्षरता का विकास करें। जैसे-जैसे विश्व अधिक परस्पर जुड़ा हुआ बनता जा रहा है, वैसे-वैसे प्रौद्योगिकी तक समान पहुँच केवल कार्यकुशलता का ही नहीं, बल्कि न्याय का भी प्रश्न बन गई है। यह सुनिश्चित करना कि तकनीकी वैश्वीकरण असमानताओं को गहरा करने के स्थान पर मानव प्रगति में सहायक बने, इक्कीसवीं शताब्दी की प्रमुख चुनौतियों में से एक होगा।

1.3.4 भाषाई तथा सांस्कृतिक आयाम – वैश्विक युग में पहचान

वैश्वीकरण की सबसे सशक्त अभिव्यक्तियों में उसके भाषायी तथा सांस्कृतिक आयाम सम्मिलित हैं, जिनके माध्यम से विचार, जीवन-शैलियाँ तथा प्रतीक अभूतपूर्व गति से सीमाओं के पार प्रसारित होते हैं। चलचित्र, परिधान, भोजन, साहित्य तथा डिजिटल माध्यम जैसे सांस्कृतिक उत्पादों के वैश्विक प्रसार ने वह स्थिति उत्पन्न की है जिसे अनेक

विचारक निरन्तर चलने वाली सांस्कृतिक प्रवाह तथा सांस्कृतिक संमिश्रण की प्रक्रिया के रूप में वर्णित करते हैं। यह प्रक्रिया स्थानीय संस्कृतियों का केवल लोप नहीं करती, बल्कि उन्हें नए और परस्पर जुड़े हुए रूपों में पुनर्गठित भी करती है। उदाहरणस्वरूप, अंग्रेज़ी भाषा ने शिक्षा, व्यापार तथा डिजिटल संचार में एक वैश्विक संपर्क-भाषा के रूप में अभूतपूर्व महत्त्व प्राप्त कर लिया है। इससे विभिन्न संस्कृतियों के मध्य संवाद को बढ़ावा मिला है, किन्तु साथ ही सांस्कृतिक एकरूपता तथा भाषायी असमानता को लेकर चिंताएँ भी उत्पन्न हुई हैं। दूसरी ओर, वैश्वीकरण सृजनात्मकता को भी प्रोत्साहित करता है और ऐसी मिश्रित पहचानों को जन्म देता है, जिनमें वैश्विक प्रभावों को स्थानीय संवेदनाओं के अनुरूप नए रूप में अपनाया जाता है। उदाहरण के लिए, कोरियाई भाषा और नृत्य-शैली के साथ पाश्चात्य लोकप्रिय संगीत का समन्वय अथवा पारम्परिक अफ्रीकी लयों का वैश्विक हिप-हॉप और जैज़ के साथ संयोजन इसके प्रमुख उदाहरण हैं। ऐसे उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि सांस्कृतिक वैश्वीकरण न तो केवल प्रभुत्व स्थापित करने की प्रक्रिया है और न ही केवल प्रतिरोध की, बल्कि यह आदान-प्रदान, समन्वय तथा अनुकूलन की एक सतत गतिशील प्रक्रिया है।

मीडिया उद्योग इस परिवर्तन के केंद्र में हैं। नेटफ्लिक्स, डिज़्नी और यूट्यूब जैसी वैश्विक कंपनियाँ तथा एक्स (पूर्व नाम ट्विटर), इंस्टाग्राम और टिकटॉक जैसे सामाजिक माध्यम विश्वभर में ऐसी सांस्कृतिक कथाओं का प्रसार करते हैं, जो लोगों की आकांक्षाओं, मूल्यों और उपभोग की प्रवृत्तियों को प्रभावित करती हैं। इन माध्यमों के द्वारा सांस्कृतिक प्रभाव मृदु शक्ति का रूप धारण कर लेता है, जो बिना किसी बलप्रयोग के राष्ट्रों और कंपनियों को वैश्विक जनमत तथा पहचान को प्रभावित करने की सामर्थ्य प्रदान करता है। अमेरिकी तथा निरंतर उभरती एशियाई लोकप्रिय संस्कृति इस क्षमता का उदाहरण हैं, जो संगीत की प्रवृत्तियों से लेकर राजनीतिक दृष्टिकोणों तक वैश्विक सोच को प्रभावित करती हैं। तथापि, माध्यमों के द्वारा सांस्कृतिक शक्ति के विस्तार ने स्वामित्व, प्रतिनिधित्व और प्रामाणिकता से संबंधित अनेक प्रश्न भी उत्पन्न किए हैं। आलोचकों का मत है कि यदि कुछ ही देशों अथवा कंपनियों के हाथों में माध्यमों की शक्ति केंद्रित हो जाए, तो विचारों की विविधता सीमित हो सकती है और व्यापारिक रूप से प्रभावशाली प्रतिमानों के इर्द-गिर्द सांस्कृतिक एकरूपता को बढ़ावा मिल सकता है।यद्यपि वैश्वीकरण में एकरूपता की प्रवृत्ति विद्यमान है, फिर भी इसके साथ प्रतिरोध तथा स्थानीयकरण की सशक्त धाराएँ भी विकसित होती हैं। इस प्रक्रिया को प्रायः वैश्विक–स्थानीय समन्वय कहा जाता है। स्थानीय समुदाय वैश्विक विचारों को अपनी परंपराओं के अनुरूप नवीन रूप देकर ऐसी विशिष्ट सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ विकसित करते हैं, जिनमें वैश्विकता और स्थानीयता का संतुलित समन्वय होता है। भारतीय चलचित्र उद्योग, जिसे लोकप्रिय रूप से बॉलीवुड कहा जाता है, इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। यह वैश्विक चलचित्र तकनीकों और शैलियों का भारतीय कथाओं, संगीत तथा सौंदर्यबोध के साथ समन्वय करता है। इसी प्रकार, अफ्रीकी मूल के संगीत तथा लैटिन अमेरिकी धारावाहिक वैश्विक बाज़ार में क्षेत्रीय शैलियों को प्रतिष्ठित कर सांस्कृतिक विविधता की पुष्टि करते हैं। ये सभी उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि सांस्कृतिक वैश्वीकरण केवल केंद्र से परिधि की ओर प्रवाहित होने वाली प्रक्रिया नहीं है, बल्कि अनेक संस्कृतियों के मध्य निरंतर संवाद की प्रक्रिया है, जिसमें सभी संस्कृतियाँ वैश्विक सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भागीदारी करती हैं। संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन ने स्वदेशी भाषाओं के दशक (2022-2032) जैसी पहलों के माध्यम से भाषाई विविधता को सांस्कृतिक स्थिरता का नैतिक आधार मानते हुए इस आवश्यकता को विशेष महत्त्व दिया है। परिणामस्वरूप, सांस्कृतिक समन्वय और समायोजन समकालीन वैश्विक युग की प्रमुख विशेषता बन गए हैं।

1.3.5 आयामों का परस्पर संबंध

यद्यपि वैश्वीकरण के प्रत्येक आयाम—आर्थिक, राजनीतिक, प्रौद्योगिकीय, भाषाई तथा सांस्कृतिक—का पृथक् अध्ययन किया जा सकता है, तथापि उनका वास्तविक महत्त्व उनके गहरे परस्पर संबंधों में निहित है। आर्थिक उदारीकरण व्यापारिक समझौतों तथा क्षेत्रीय संस्थाओं के माध्यम से राजनीतिक सहयोग को प्रोत्साहित करता है, जबकि इन संस्थाओं का प्रभावी संचालन प्रौद्योगिकीय आधारभूत संरचना पर निर्भर करता है। डिजिटल प्रौद्योगिकियों का प्रसार वैश्विक व्यापार को गति देता है, सीमाओं के पार सामाजिक सक्रियता को सुदृढ़ करता है तथा सांस्कृतिक संप्रेषण को नया स्वरूप प्रदान करता है। सांस्कृतिक आदान-प्रदान उपभोक्ता बाज़ारों का विस्तार करता है और राजनीतिक गठबंधनों को वैधता प्रदान करता है, जबकि साझा शासन-व्यवस्थाएँ असमान समेकन से उत्पन्न तनावों को नियंत्रित करने का प्रयास करती हैं। वैश्विक पूँजी का प्रवाह सांस्कृतिक सृजन को प्रभावित करता है; सांस्कृतिक कथाएँ बाज़ार की माँग को दिशा देती हैं; राजनीतिक व्यवस्थाएँ यह निर्धारित करती हैं कि प्रौद्योगिकी का प्रसार किस प्रकार होगा; और प्रौद्योगिकीय नवाचार राज्यों तथा नागरिक समाज—दोनों की क्षमता का विस्तार करता है। प्रत्येक आयाम अन्य आयामों को सशक्त भी बनाता है और कभी-कभी सीमित भी करता है, जिससे परस्पर सहयोग तथा समय-समय पर उत्पन्न होने वाले संघर्षों का एक सघन तंत्र निर्मित होता है।

अतः वैश्वीकरण को किसी सरल रैखिक प्रक्रिया के रूप में नहीं, बल्कि विभिन्न आयामों के मध्य निरंतर प्रतिपुष्टि और परस्पर क्रिया द्वारा विकसित होने वाली एक जटिल व्यवस्था के रूप में समझना चाहिए। संकट के क्षण—जैसे वित्तीय पतन, महामारी अथवा पर्यावरणीय आपदाएँ—इस पारस्परिक निर्भरता की व्यापकता को स्पष्ट कर देते हैं, क्योंकि किसी एक क्षेत्र में उत्पन्न व्यवधान का प्रभाव शीघ्र ही अन्य सभी क्षेत्रों पर पड़ता है। उदाहरणार्थ, कोरोना महामारी ने एक साथ वैश्विक स्वास्थ्य व्यवस्था, आपूर्ति शृंखलाओं, डिजिटल संचार, राष्ट्रीय राजनीति तथा सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को प्रभावित किया। इससे वैश्विक व्यवस्थाओं की सामर्थ्य और उनकी संवेदनशीलता, दोनों का परिचय मिला। इन सभी आयामों के पारस्परिक संबंधों को समझना ऐसी नीतियों के निर्माण के लिए अत्यंत आवश्यक है, जो वैश्वीकरण के लाभों को अपनाते हुए उससे उत्पन्न होने वाले जोखिमों को भी न्यूनतम कर सकें। अतः वैश्वीकरण कोई एकरूप शक्ति नहीं है, बल्कि निरंतर विकसित होने वाली ऐसी वास्तविकता है, जिसका स्वरूप तकनीकी प्रगति, आर्थिक आकांक्षा, राजनीतिक सत्ता तथा मानवीय संस्कृति की स्थायी विविधता से निर्मित होता है।

1.4 सारांश

इस इकाई में वैश्वीकरण के ऐतिहासिक विकास, वैचारिक विमर्श तथा उसके बहुआयामी स्वरूप का अध्ययन किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण आधुनिक विश्व को रूपांतरित करने वाली सबसे प्रभावशाली शक्तियों में से एक है। रेशम मार्ग तथा प्रारम्भिक समुद्री व्यापार से लेकर इक्कीसवीं शताब्दी के डिजिटल संजालों तक, वैश्वीकरण ने क्रमशः भौगोलिक दूरियों को सीमित किया है और समाजों के मध्य पारस्परिक निर्भरता को सुदृढ़ बनाया है। विद्वानों के मत इस विषय में भिन्न-भिन्न हैं। कुछ इसे सीमाहीन युग का प्रारम्भ मानते हैं, जबकि अन्य इसे अतिरंजित अवधारणा अथवा दीर्घकाल से विद्यमान साम्राज्यवादी और पूँजीवादी संरचनाओं का विस्तार मानते हैं। इन विभिन्न मतों से यह स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण को किसी एक अर्थ या परिणाम तक सीमित नहीं किया जा सकता, बल्कि इसे निरंतर विकसित होने वाली और विचार-विमर्श का विषय बनी रहने वाली प्रक्रिया के रूप में समझना चाहिए।

आर्थिक दृष्टि से उदारीकरण और तकनीकी नवाचार ने बाज़ारों का विस्तार किया है, उत्पादन व्यवस्था का पुनर्गठन किया है तथा व्यापार को तीव्र गति प्रदान की है। साथ ही, इनसे वैश्विक असमानताएँ और संवेदनशीलताएँ भी बढ़ी

हैं। राजनीतिक दृष्टि से राष्ट्र समाप्त नहीं हुए हैं, बल्कि उन्होंने अंतर-सरकारी संस्थाओं, क्षेत्रीय समूहों तथा गैर-सरकारी पक्षों सहित वैश्विक शासन की जटिल व्यवस्थाओं के माध्यम से सहयोग करते हुए स्वयं को नई परिस्थितियों के अनुरूप ढाला है। डिजिटल क्रान्ति से प्रेरित तकनीकी प्रगति ने त्वरित संचार के माध्यम से अर्थव्यवस्थाओं और समाजों को परस्पर जोड़ा है, किन्तु साथ ही विभिन्न क्षेत्रों और सामाजिक वर्गों के बीच संसाधनों तथा क्षमताओं की गहरी विषमताओं को भी उजागर किया है। सांस्कृतिक और भाषायी आदान-प्रदान ने साझा माध्यमों तथा मिश्रित पहचानों के द्वारा दूरस्थ समाजों को एक-दूसरे से जोड़ा है, फिर भी स्थानीय परम्पराएँ अपनी विशिष्टता बनाए रखते हुए एकरूपता के दबाव का निरंतर प्रतिरोध करती रही हैं।

समग्र रूप से ये सभी तथ्य स्पष्ट करते हैं कि वैश्वीकरण न तो एक अनिवार्य रूप से सबको एकरूप बना देने वाली शक्ति है और न ही सांस्कृतिक विविधता के लिए समान रूप से हानिकारक संकट। इसे ऐसी परिवर्तनकारी प्रक्रिया के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है, जो एक ओर मानव समाजों को परस्पर जोड़ती है और दूसरी ओर उनकी विविधताओं को भी बनाए रखती है। जैसे-जैसे वैश्विक संबंध अधिक गहरे होते जाएँगे, इक्कीसवीं शताब्दी की सबसे बड़ी चुनौती ऐसी न्यायपूर्ण, सहभागितापूर्ण और सतत वैश्विक पारस्परिक व्यवस्था का निर्माण करना होगी, जो विविधता की रक्षा करते हुए हमारे परस्पर जुड़े हुए विश्व के भविष्य के प्रति साझा उत्तरदायित्व की भावना को सुदृढ़ बनाए।

1.5 शब्दावली

- **वैश्वीकरण :** विश्व के दूरस्थ क्षेत्रों के मध्य सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक संबंधों का सुदृढ़ और व्यापक विस्तार।
- **अति-वैश्वीकरणवाद** (Hyperglobalism): यह दृष्टिकोण मानता है कि वैश्विक बाज़ार राष्ट्रीय सीमाओं से ऊपर उठ चुके हैं और इससे राष्ट्र-राज्यों की शक्ति में कमी आई समझना
- **संशयवाद** (Scepticism): यह मत मानता है कि वर्तमान वैश्विक परस्पर निर्भरता को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है तथा यह मुख्यतः क्षेत्रीय स्तर तक सीमित है।
- **रूपांतरणवाद** (Transformationalism): यह दृष्टिकोण मानता है कि वैश्वीकरण वास्तविक है, परंतु यह राष्ट्र-राज्यों का अंत नहीं करता, बल्कि उनकी संरचना और कार्यप्रणाली में परिवर्तन लाता है।
- **वैश्विक शासन** (Global Governance): अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं तथा साझा मानकों के माध्यम से वैश्विक समस्याओं और विषयों का समन्वित प्रबंधन।
- **वैश्विक मूल्य शृंखला** (Global Value Chain – GVC): अंतरराष्ट्रीय उत्पादन की वह खंडित प्रक्रिया, जिसका समन्वय बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा किया जाता है।
- **डिजिटल विभाजन** (Digital Divide): डिजिटल प्रौद्योगिकी और इंटरनेट संपर्क तक असमान पहुँच की स्थिति।
- **वैश्वीकरण** (Globalisation): विश्व के देशों, समाजों और अर्थव्यवस्थाओं के बीच बढ़ती परस्पर निर्भरता, संपर्क तथा एकीकरण की प्रक्रिया।

- **मृदु शक्ति** (Soft Power): बल प्रयोग के स्थान पर संस्कृति, मूल्यों और आकर्षण के माध्यम से दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता।
- **समय–स्थान संपीड़न** (Time–Space Compression): प्रौद्योगिकी के कारण वैश्विक स्तर पर दूरी और समय के प्रभाव का कम हो जाना।

1.6 अभ्यास प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अपने शब्दों में वैश्वीकरण की परिभाषा दीजिए।
2. अति-वैश्वीकरणवादी, संशयवादी तथा रूपांतरणवादी दृष्टिकोणों में अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. आर्थिक वैश्वीकरण को गति देने वाले किसी दो प्रमुख कारकों का उल्लेख कीजिए।
4. वैश्वीकरण क्या है?
5. डिजिटल विभाजन की व्याख्या कीजिए।

(ख) निबंधात्मक / दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. वैश्वीकरण से संबंधित प्रमुख सैद्धान्तिक बहसों का समालोचनात्मक विश्लेषण कीजिए।
2. वैश्वीकरण के आर्थिक एवं राजनीतिक आयामों का मूल्यांकन कीजिए।
3. वैश्विक परस्पर निर्भरता के निर्माण में प्रौद्योगिकी की भूमिका की विवेचना कीजिए।
4. वैश्वीकरण का भाषाई विविधता पर पड़ने वाले प्रभावों का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
5. वैश्विक शासन किस प्रकार वैश्विक एकीकरण और राष्ट्रीय संप्रभुता के बीच संतुलन स्थापित कर सकता है?

1.7 सन्दर्भ सूची

- Hirst, Paul; Thompson, Grahame; & Bromley, Simon (2009). *Globalization in Question.* Polity Press.
- Heywood, Andrew (2011). *Global Politics.* Palgrave Macmillan.
- Lechner, Frank & Boli, John (eds.) (2004). *The Globalization Reader.* Blackwell.
- Baylis, Smith & Owens (2017). *The Globalization of World Politics.* Oxford University Press.
- Steger, Manfred B. (2017). *Globalization: A Very Short Introduction.* Oxford University Press.

समकालीन विश्व के प्रमुख अभिकर्ता

संरचना

2.1 अधिगम उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना – वैश्विक अभिकर्ताओं की समझ

2.3 संयुक्त राष्ट्र

2.3.1 स्थापना एवं संरचना

2.3.2 कार्य तथा विशिष्ट अभिकरण

2.3.3 समकालीन प्रासंगिकता एवं आलोचनाएँ

2.4 विश्व व्यापार संगठन

2.4.1 उद्गम – सामान्य शुल्क एवं व्यापार समझौते से विश्व व्यापार संगठन तक

2.4.2 कार्य तथा विवाद निपटान व्यवस्था

2.4.3 विकासशील देश एवं वर्तमान चुनौतियाँ

2.5 अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष

2.5.1 स्थापना एवं उद्देश्य

2.5.2 ऋण व्यवस्था एवं शर्तें

2.5.3 सुधार एवं समकालीन आलोचनाएँ

2.6 संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन

2.6.1 दायित्व एवं प्रमुख कार्यक्षेत्र

2.6.2 शिक्षा, संस्कृति तथा धरोहर संरक्षण में भूमिका

2.6.3 वैश्विक सांस्कृतिक संवाद में संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन की भूमिका

2.7 वैश्विक संस्थाओं का तुलनात्मक महत्त्व

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 अभ्यास प्रश्न

2.11 सन्दर्भ सूची

2.1 अधिगम उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन पूर्ण करने के उपरांत विद्यार्थी—

- वैश्विक अभिकर्ताओं की अवधारणा का विवेचन कर सकेंगे तथा अंतरराष्ट्रीय संबंधों में राज्य अभिकर्ताओं और गैर-राज्य अभिकर्ताओं के मध्य स्पष्ट भेद कर सकेंगे।
- संयुक्त राष्ट्र (यूएन), विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ), अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) तथा संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) जैसे प्रमुख अंतरराष्ट्रीय संगठनों की उत्पत्ति, संरचना तथा कार्यों का वर्णन करना।
- यह विश्लेषण करना कि ये संस्थाएँ वैश्विक शासन, विकास, मानवाधिकारों तथा सांस्कृतिक सहयोग को किस प्रकार प्रभावित करती हैं।
- वैश्विक व्यवस्था के विनियमन में बहुपक्षीय संगठनों के राजनीतिक एवं आर्थिक महत्त्व का मूल्यांकन करना।
- अंतरराष्ट्रीय संगठनों से संबंधित समकालीन आलोचनाओं तथा सुधार-विमर्श का मूल्यांकन करना।
- वैश्विक व्यवस्था की निर्णय-निर्माण प्रक्रियाओं में विकासशील देशों, विशेषतः भारत, की निरंतर विकसित होती भूमिका को समझना और उसका महत्त्व स्वीकार करना।

2.2 प्रस्तावना — वैश्विक अभिकर्ताओं को समझना

समकालीन विश्व व्यवस्था राज्यों, अंतरराष्ट्रीय संगठनों तथा अंतरराष्ट्रीय सीमाओं से परे कार्य करने वाले विभिन्न अभिकर्ताओं के बीच होने वाली जटिल अंतःक्रियाओं के व्यापक तंत्र से निर्मित होती है। यद्यपि संप्रभु राज्य आज भी अंतरराष्ट्रीय संबंधों के प्रमुख घटक हैं, तथापि वे अब विश्व राजनीति के एकमात्र अथवा सर्वोच्च निर्धारक नहीं रह गए हैं। व्यापार, वित्त, मानवाधिकार, स्वास्थ्य तथा पर्यावरण के क्षेत्रों में बढ़ती परस्पर निर्भरता ने उस व्यवस्था को जन्म दिया है जिसे विद्वान वैश्विक शासन कहते हैं। यह ऐसी प्रणाली है जिसमें अधिकार तथा निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया अनेक स्तरों पर और विविध संस्थाओं के माध्यम से संचालित होती है। इस बहुआयामी शक्ति-संरचना में वैश्विक अभिकर्ता उन संस्थाओं, संगठनों तथा नेटवर्कों को कहा जाता है जो राष्ट्रीय सीमाओं से परे कार्य करते हैं तथा अंतरराष्ट्रीय मानकों, कार्यसूचियों और नीतियों को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं।

इस प्रकार, राष्ट्रों के बीच पारंपरिक कूटनीति के साथ-साथ अब बहुपक्षीय संस्थाओं की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका हो गई है, जिनका उद्देश्य जटिल वैश्विक परिस्थितियों का प्रबंधन करना तथा सामूहिक प्रयासों का समन्वय करना है। संयुक्त राष्ट्र, विश्व व्यापार संगठन, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा यूनेस्को जैसे संगठन नियमों का निर्माण करके, वार्ताओं को सुगम बनाकर तथा उन समस्याओं का समाधान खोजकर सहयोग के लिए संस्थागत ढाँचा प्रदान करते हैं जिनके समाधान हेतु वैश्विक स्तर पर सामूहिक प्रयास आवश्यक होते हैं। ये संस्थाएँ शांति, आर्थिक स्थिरता, सतत विकास तथा सांस्कृतिक संरक्षण जैसे साझा हितों को व्यवहारिक कार्य-प्रणालियों में रूपांतरित करके वैश्वीकरण के संस्थागत स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन अंतरसरकारी निकायों के अतिरिक्त बहुराष्ट्रीय निगम, नागरिक समाज के संगठन तथा गैर-सरकारी संगठन भी राष्ट्रीय सीमाओं से परे सक्रिय रहते हैं और राज्य-केंद्रित विश्व राजनीति की पारंपरिक अवधारणा को चुनौती देते हैं।

इन वैश्विक अभिकर्ताओं का उद्भव व्यावहारिक आवश्यकता तथा मानवीय आदर्श—दोनों का परिणाम है। महामारी, जलवायु परिवर्तन, विस्थापन तथा वित्तीय संकट जैसी जटिल वैश्विक चुनौतियों का समाधान कोई भी राष्ट्र अकेले नहीं कर सकता; इनके लिए सक्षम एवं वैध संस्थाओं के माध्यम से सहयोग आवश्यक है। साथ ही, ये संस्थाएँ न्याय, समानता तथा सांस्कृतिक समझ के वैश्विक मानकों की स्थापना के प्रति मानवता की सामूहिक

आकांक्षा का भी प्रतीक हैं। फिर भी, उनकी प्रभावशीलता तथा वैधता पर निरंतर प्रश्न उठते रहते हैं, क्योंकि शक्ति की असमानताएँ और राजनीतिक हित उनके कार्य-व्यवहार को अनिवार्य रूप से प्रभावित करते हैं।

2.3 संयुक्त राष्ट्र (UN)

संयुक्त राष्ट्र आधुनिक अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था का सबसे व्यापक संगठन है, जो वैश्विक सहयोग को समर्पित है। मानव इतिहास के सबसे विनाशकारी युद्ध के बाद स्थापित इस संगठन का उद्देश्य भविष्य में युद्धों को रोकना, विश्व शांति को सुदृढ़ करना तथा मानव कल्याण को बढ़ावा देना है। समय के साथ यह विभिन्न अंगों, अभिकरणों तथा कार्यक्रमों के विस्तृत तंत्र के रूप में विकसित हुआ है, जो सुरक्षा, विकास, मानवाधिकार, स्वास्थ्य, शिक्षा और पर्यावरण सहित शासन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करता है। अनेक चुनौतियों और आलोचनाओं के बावजूद संयुक्त राष्ट्र आज भी अंतरराष्ट्रीय समुदाय का सर्वाधिक समावेशी तथा प्रतीकात्मक रूप से सबसे महत्त्वपूर्ण संगठन बना हुआ है।

2.3.1 उत्पत्ति एवं संरचना

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना 24 अक्टूबर 1945 को 51 संस्थापक सदस्य देशों द्वारा संयुक्त राष्ट्र अधिकार-पत्र के अनुमोदन के पश्चात हुई। इसकी स्थापना का उद्देश्य मित्र राष्ट्रों के उस संकल्प को मूर्त रूप देना था, जिसके माध्यम से वे दो विश्वयुद्धों के दौरान विश्व को घेरने वाली हिंसा और अस्थिरता की पुनरावृत्ति को रोकना तथा राष्ट्र संघ की कमियों को दूर करना चाहते थे। जून 1945 में सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन में हस्ताक्षरित अधिकार-पत्र ने संयुक्त राष्ट्र को ऐसा संगठन बनाया, जिसकी आधारशिला राष्ट्रों की संप्रभु समानता, सामूहिक सुरक्षा तथा विवादों के शांतिपूर्ण समाधान पर रखी गई। इसकी मूल भावना यह थी कि सार्वभौमिक सदस्यता की नैतिक शक्ति को प्रमुख राष्ट्रों के मध्य व्यावहारिक शक्ति-साझेदारी के साथ समन्वित किया जाए।

संयुक्त राष्ट्र की संरचना छह प्रमुख अंगों में विभाजित है—

1. **महासभा**– इसमें सभी सदस्य राष्ट्र सम्मिलित होते हैं। यह विचार-विमर्श का सर्वोच्च मंच है, जहाँ वैश्विक विषयों पर चर्चा की जाती है, प्रस्ताव पारित किए जाते हैं तथा सामूहिक मानदंड निर्धारित किए जाते हैं।
2. **सुरक्षा परिषद**– इसमें कुल 15 सदस्य होते हैं, जिनमें 5 स्थायी सदस्य (चीन, फ्रांस, रूस, यूनाइटेड किंगडम तथा संयुक्त राज्य अमेरिका) तथा 10 अस्थायी सदस्य दो वर्ष के कार्यकाल के लिए चुने जाते हैं। अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने की प्राथमिक जिम्मेदारी इसी परिषद की होती है।
3. **आर्थिक एवं सामाजिक परिषद**– यह संयुक्त राष्ट्र के विशिष्ट अभिकरणों की गतिविधियों का समन्वय करती है तथा आर्थिक, सामाजिक और मानवीय क्षेत्रों में अंतरराष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करती है।
4. **अंतरराष्ट्रीय न्यायालय**– इसका मुख्यालय हेग में स्थित है। यह राष्ट्रों के बीच उत्पन्न विवादों का न्यायिक निपटारा करता है तथा संयुक्त राष्ट्र द्वारा संदर्भित विधिक प्रश्नों पर परामर्शात्मक अभिमत प्रदान करता है।
5. **सचिवालय**– इसका नेतृत्व महासचिव करते हैं। यह संयुक्त राष्ट्र के दैनिक प्रशासन का संचालन करता है तथा अंतरराष्ट्रीय समुदाय के निष्पक्ष मध्यस्थ और प्रवक्ता के रूप में कार्य करता है।
6. **न्यास परिषद्**– जो अब अधिकांशतः निष्क्रिय है– उन क्षेत्रों की देखरेख करती थी जो उपनिवेशीय शासन से स्वशासन की ओर अग्रसर थे। यह द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् उपनिवेशवाद के अंत के अभियान का प्रतीक थी।

प्रारम्भ में संयुक्त राष्ट्र के 51 सदस्य थे, जो बढ़कर आज 193 सदस्य राष्ट्र हो गए हैं। यह व्यापक सदस्यता इसे लगभग सार्वभौमिक प्रतिनिधित्व और अद्वितीय वैधता प्रदान करती है, किन्तु साथ ही सर्वसम्मति बनाना अधिक जटिल तथा राजनीतिक दृष्टि से संवेदनशील भी बनाती है।

2.3.2 कार्य एवं विशिष्ट अभिकरण

संयुक्त राष्ट्र के कार्य उसके उस व्यापक उद्देश्य को प्रतिबिंबित करते हैं जिसमें भावी पीढ़ियों को युद्ध की विभीषिका से बचाना तथा अधिक स्वतंत्रता के वातावरण में सामाजिक प्रगति और उत्तम जीवन-स्तर को बढ़ावा देना सम्मिलित है। इसका मूल उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की रक्षा करना है। इसके लिए यह शांति स्थापना अभियानों का संचालन करता है, पर्यवेक्षक दल नियुक्त करता है तथा संघर्षग्रस्त क्षेत्रों में वार्ताओं को सुगम बनाता है। साइप्रस और लेबनान जैसे परंपरागत शांति अभियानों से लेकर कांगो लोकतांत्रिक गणराज्य, माली तथा दक्षिण सूडान जैसे देशों में बहुआयामी हस्तक्षेप तक, संयुक्त राष्ट्र ने संघर्षोत्तर पुनर्निर्माण और मानवीय सहायता के लिए अत्यंत विकसित व्यवस्थाएँ स्थापित की हैं।

सुरक्षा के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकारों, विकास तथा पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा देने में भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा (1948) ने नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों से संबंधित आगे की अनेक संधियों के लिए नैतिक आधार प्रदान किया। सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (2000–2015) से लेकर सतत विकास लक्ष्य (2015-2030) तक की विकास योजनाएँ निर्धनता, भूख और असमानता के विरुद्ध वैश्विक प्रयासों के समन्वय में संयुक्त राष्ट्र के नेतृत्व को स्पष्ट करती हैं। इसके अतिरिक्त यह संस्था जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र रूपरेखा अभिसमय तथा पेरिस समझौता (2015) जैसे अंतरराष्ट्रीय समझौतों के माध्यम से जलवायु परिवर्तन का सामूहिक रूप से सामना करने को प्रोत्साहित करती है।

संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था में अनेक विशिष्ट अभिकरण, कार्यक्रम तथा निधियाँ सम्मिलित हैं, जिनमें प्रत्येक का अपना कार्यक्षेत्र, सदस्यता और प्रशासनिक ढाँचा है। प्रमुख अभिकरणों में विश्व स्वास्थ्य संगठन (वैश्विक स्वास्थ्य), खाद्य एवं कृषि संगठन (खाद्य सुरक्षा), अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (श्रमिक अधिकार), संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (सांस्कृतिक सहयोग), संयुक्त राष्ट्र बाल निधि (बाल कल्याण) तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (सतत विकास) प्रमुख हैं। ये संस्थाएँ संयुक्त राष्ट्र के प्रभाव को राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर तक पहुँचाते हुए करोड़ों लोगों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कार्यात्मक सहयोग प्रदान करती हैं। अपने विविध कार्यों के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र केवल शांति बनाए रखने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि शरणार्थियों के संरक्षण, आपदा राहत, लैंगिक समानता, विज्ञान, शिक्षा तथा जनस्वास्थ्य जैसे अनेक क्षेत्रों में वैश्विक सुशासन को भी प्रोत्साहित करता है।

2.3.3 समकालीन प्रासंगिकता एवं आलोचनाएँ

इक्कीसवीं शताब्दी में भी संयुक्त राष्ट्र संवाद और सामूहिक कार्रवाई के लिए एक अनिवार्य वैश्विक मंच बना हुआ है। तथापि इसकी प्रभावशीलता तथा वैधता आज भी निरंतर विचार-विमर्श और आलोचना का विषय बनी हुई है। समर्थकों का मत है कि संयुक्त राष्ट्र ने बड़े पैमाने के युद्धों को रोकने, क्षेत्रीय संघर्षों में मध्यस्थता करने, उपनिवेशवाद की समाप्ति का समर्थन करने तथा मानवाधिकारों के उन मानकों को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जो आज की अंतरराष्ट्रीय विधिक व्यवस्था की आधारशिला हैं। संयुक्त राष्ट्र की कूटनीतिक, मानवीय और विकास संबंधी गतिविधियों ने असंख्य लोगों के प्राणों की रक्षा की, अस्थिर राज्यों को स्थिरता प्रदान की तथा छोटे और विकासशील देशों को वैश्विक निर्णय-निर्माण में अपनी बात रखने का अवसर दिया। बहुपक्षवाद की अवधारणा—

अर्थात् एकपक्षीय अथवा केवल राष्ट्रीय दृष्टिकोण की अपेक्षा सामूहिक प्रयास को अधिक उपयुक्त मानना—आज भी संयुक्त राष्ट्र की स्थायी प्रासंगिकता का प्रमुख आधार है।

इसके विपरीत, आलोचकों का मत है कि यह संगठन तीव्र गति से परिवर्तित होती विश्व-व्यवस्था की अपेक्षाओं को पूरा करने में अनेक बार असफल सिद्ध होता है। सुरक्षा परिषद की संरचना,जोकि 1945 की शक्ति-संतुलन व्यवस्था पर आधारित है, वर्तमान भू-राजनीतिक वास्तविकताओं का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं करती। भारत, ब्राज़ील, जर्मनी और जापान जैसी उभरती शक्तियों को स्थायी तथा अस्थायी सदस्यता में स्थान देने की माँग न्यायसंगत और संतुलित प्रतिनिधित्व की बढ़ती आवश्यकता को दर्शाती है। प्रशासनिक अक्षमता, वित्तीय संसाधनों की कमी तथा राजनीतिक गतिरोध ने सीरिया, यमन और अन्य क्षेत्रों में उत्पन्न मानवीय संकटों के प्रति संगठन की प्रभावी प्रतिक्रिया को भी सीमित किया है। इसके अतिरिक्त, स्थायी पाँच सदस्यों के असमान प्रभाव तथा उनके निषेधाधिकार ने वैश्विक निर्णय-निर्माण की उत्तरदायित्वपूर्ण और लोकतांत्रिक वैधता पर भी प्रश्नचिह्न लगाए हैं।

फिर भी, इन सीमाओं के बावजूद ऐसा कोई अन्य संगठन उपलब्ध नहीं है, जिसके पास संयुक्त राष्ट्र जैसी सार्वभौमिक पहुँच और नैतिक अधिकार हो। इसकी निरंतर प्रासंगिकता समय के अनुरूप स्वयं को परिवर्तित करने की क्षमता में निहित है। स्थायी विकास के लिए बहुपक्षीय व्यवस्थाओं को अपनाना, शांति स्थापना तथा निवारक कूटनीति को प्रोत्साहन देना इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। सतत विकास लक्ष्यों के समर्थन, महामारी के समय वैश्विक स्वास्थ्य संबंधी प्रयासों के समन्वय तथा मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए किए गए इसके कार्य यह सिद्ध करते हैं कि संयुक्त राष्ट्र आज भी अंतरराष्ट्रीय समुदाय का नैतिक और संस्थागत केंद्र बना हुआ है। यद्यपि यह पूर्णतः दोषरहित नहीं है, फिर भी संयुक्त राष्ट्र सहयोगात्मक वैश्विक शासन का मानवता का सबसे महत्त्वाकांक्षी प्रयास है, जो परस्पर निर्भर विश्व की उपलब्धियों और चुनौतियों—दोनों का प्रतिनिधित्व करता है।

2.4 विश्व व्यापार संगठन

विश्व व्यापार संगठन अंतरराष्ट्रीय व्यापार को विनियमित करने तथा खुले, नियम-आधारित और बहुपक्षीय व्यापारिक तंत्र को प्रोत्साहित करने वाली प्रमुख संस्था है। यह आर्थिक वैश्वीकरण का संस्थागत केंद्र है, जो उन मानकों का निर्धारण करता है जिनके आधार पर विभिन्न राष्ट्र वस्तुओं, सेवाओं तथा बौद्धिक संपदा का सीमा-पार आदान-प्रदान करते हैं। यह संगठन केवल व्यापारिक वार्ताओं का मंच ही नहीं है, बल्कि व्यापारिक विवादों के समाधान तथा व्यापारिक नीतियों की निगरानी का प्रभावी तंत्र भी है। इसका विकास द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् उत्पन्न उस व्यापक सहमति का परिणाम है, जिसके अनुसार आर्थिक परस्पर निर्भरता शांति और समृद्धि को बढ़ावा देती है। साथ ही, यह व्यापार उदारीकरण और राष्ट्रीय विकास संबंधी प्राथमिकताओं के बीच विद्यमान संतुलन और तनाव को भी अभिव्यक्त करता है, जो आज भी वैश्विक अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर रहे हैं।

2.4.1 उत्पति – सामान्य शुल्क एवं व्यापार समझौते से विश्व व्यापार संगठन तक

विश्व व्यापार संगठन की जड़ें सामान्य शुल्क एवं व्यापार समझौते में निहित हैं, जिस पर सन् 1947 में द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् पुनर्निर्माण के प्रयासों के अंतर्गत हस्ताक्षर किए गए थे। प्रारंभ में इसे अंतरराष्ट्रीय व्यापार संगठन की स्थापना तक एक अस्थायी व्यवस्था के रूप में बनाया गया था, किंतु बाद में यही वैश्विक व्यापार के विनियमन का वास्तविक संस्थागत ढाँचा बन गया। इसका उद्देश्य आयात-निर्यात पर लगाए जाने वाले शुल्क तथा व्यापार की अन्य बाधाओं को कम करना, संरक्षणवादी प्रवृत्तियों को रोकना तथा ऐसे निश्चित नियम स्थापित करना था, जिनसे आर्थिक पुनरुत्थान और विकास को प्रोत्साहन मिल सके।

अगले पाँच दशकों में गैट के अंतर्गत अनेक चरणों में वार्ताएँ सम्पन्न हुई। इनमें केनेडी चरण (1964–67), टोक्यो चरण (1973–79) तथा उरुग्वे चरण (1986–94) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन वार्ताओं के परिणामस्वरूप सदस्य देशों की संख्या और कार्यक्षेत्र दोनों का विस्तार हुआ। उरुग्वे चरण के समापन तक विश्व व्यापार केवल वस्तुओं के आदान-प्रदान तक सीमित नहीं रहा, बल्कि सेवाओं, बौद्धिक संपदा, कृषि तथा निवेश संबंधी उपायों को भी अपने अंतर्गत सम्मिलित करने लगा। इन क्षेत्रों के प्रभावी संचालन के लिए अधिक औपचारिक और व्यापक संस्थागत व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव की गई। परिणामस्वरूप वर्ष 1995 में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई। इसका मुख्यालय स्विट्जरलैंड के जिनेवा नगर में स्थापित किया गया। इस संगठन ने गैट का स्थान ग्रहण किया तथा इसे विधिक व्यक्तित्व और अधिक व्यापक अधिकार-क्षेत्र प्रदान किया गया। विश्व व्यापार संगठन की व्यवस्था कुछ मूलभूत समझौतों पर आधारित है। इनमें गैट 1994, जो वस्तुओं के व्यापार को नियंत्रित करता है; सेवाओं के व्यापार संबंधी सामान्य समझौता, तथा व्यापार से संबंधित बौद्धिक संपदा अधिकार संबंधी समझौता प्रमुख हैं। ये आधारभूत समझौते इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि वैश्वीकरण के कारण विश्व व्यापार केवल वस्तुओं के आदान-प्रदान तक सीमित न रहकर प्रौद्योगिकी, वित्त तथा ज्ञान-आधारित उद्योगों के विनियमन तक विस्तृत हो गया है। वर्तमान में विश्व व्यापार संगठन के 164 सदस्य राष्ट्र हैं, जो विश्व व्यापार के लगभग 98 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह संगठन सर्वसम्मति के सिद्धांत पर कार्य करता है, जिसके अनुसार प्रत्येक सदस्य राष्ट्र—चाहे वह बड़ा हो या छोटा—सैद्धांतिक रूप से समान मताधिकार रखता है, यद्यपि व्यवहार में शक्ति का असंतुलन अनेक बार बना रहता है।

2.4.2 कार्य तथा विवाद निपटान

विश्व व्यापार संगठन का मुख्य उद्देश्य विभिन्न देशों के बीच निष्पक्ष, सुचारु और संतुलित व्यापारिक संबंधों को प्रोत्साहित करना है। इसके लिए यह बाध्यकारी नियम तथा पारस्परिक सहयोग की व्यवस्थाएँ उपलब्ध कराता है। इसके प्रमुख कार्य व्यापारिक वार्ता, समझौतों का क्रियान्वयन, पर्यवेक्षण तथा विवादों का निपटान हैं।

प्रथम, विश्व व्यापार संगठन व्यापारिक वार्ताओं का एक महत्त्वपूर्ण मंच प्रदान करता है, जहाँ सदस्य राष्ट्र सीमा शुल्क में कमी, बाज़ार तक पहुँच तथा व्यापार संबंधी नए नियमों पर विचार-विमर्श कर सहमति बनाते हैं। उदाहरणस्वरूप, वर्ष 2001 में प्रारंभ किया गया दोहा विकास कार्यक्रम विकासशील देशों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के उद्देश्य से आरंभ किया गया था। इसका लक्ष्य कृषि सुधारों को प्रोत्साहित करना, बाज़ारों तक अधिक न्यायसंगत पहुँच सुनिश्चित करना तथा क्षमता-विकास संबंधी उपायों को बढ़ावा देना था।

द्वितीय, यह संगठन व्यापारिक समझौतों के क्रियान्वयन का प्रशासन और पर्यवेक्षण करता है तथा यह सुनिश्चित करता है कि सभी सदस्य राष्ट्र अपने दायित्वों का पालन करें। व्यापार नीति पुनरावलोकन व्यवस्था के माध्यम से सदस्य देशों की व्यापार नीतियों का समय-समय पर मूल्यांकन किया जाता है, जिससे अंतरराष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था में पारदर्शिता और पूर्वानुमेयता बढ़ती है।

तृतीय, और सबसे विशिष्ट रूप से, विश्व व्यापार संगठन विवाद निपटान निकाय का संचालन करता है, जिसे प्रायः इस संगठन का श्रेष्ठतम अंग माना जाता है। यदि किसी सदस्य राष्ट्र को यह प्रतीत होता है कि किसी अन्य सदस्य राष्ट्र की नीतियाँ विश्व व्यापार संगठन के नियमों का उल्लंघन करती हैं, तो वह स्वतंत्र निर्णय-मंडल के समक्ष शिकायत प्रस्तुत कर सकता है। इस निर्णय के विरुद्ध अपीलीय निकाय में अपील की जा सकती है, जिसके निर्णय बाध्यकारी होते हैं। इस व्यवस्था से व्यापार संबंधी विवाद राजनीतिक प्रतिशोध के स्थान पर विधिक प्रक्रिया के माध्यम से सुलझाए जाते हैं, जिससे निवेशकों और व्यापारियों का विश्वास तथा व्यापारिक स्थिरता बनी रहती है।

वर्ष 1995 से 2019 के मध्य 500 से अधिक विवादों का निपटारा किया गया, जो इस व्यवस्था की व्यापक प्रभावशीलता का प्रमाण है।

2.4.3 विकासशील देश और वर्तमान चुनौतियाँ

अपनी उपलब्धियों के बावजूद विश्व व्यापार संगठन विकसित और विकासशील देशों के बीच गहरे मतभेदों का केंद्र बना हुआ है। आलोचकों का मत है कि वैश्विक व्यापार उदारीकरण का लाभ मुख्यतः विकसित औद्योगिक देशों को ही अधिक प्राप्त हुआ है, क्योंकि उनके पास अधिक सौदेबाज़ी की शक्ति, उन्नत प्रौद्योगिकी तथा व्यापक बाज़ार उपलब्ध हैं। दूसरी ओर, विकासशील देशों को विकसित देशों द्वारा कृषि क्षेत्र में दी जाने वाली सहायता, गैर-शुल्कीय व्यापारिक बाधाओं तथा बौद्धिक संपदा अधिकारों से संबंधित प्रावधानों के कारण अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इन कारणों से सस्ती औषधियों और आधुनिक प्रौद्योगिकी तक उनकी पहुँच सीमित हो जाती है। इन असमानताओं को दूर करने के उद्देश्य से आरंभ की गई दोहा वार्ता भी कृषि सुधार, औद्योगिक शुल्क तथा सेवा क्षेत्र के उदारीकरण जैसे विषयों पर निरंतर मतभेदों के कारण वर्षों से ठप पड़ी हुई है।

एक अन्य प्रमुख चुनौती स्वयं वैश्विक अर्थव्यवस्था के तीव्र परिवर्तन की है। डिजिटल व्यापार, इलेक्ट्रॉनिक वाणिज्य तथा आँकड़ों के अंतरराष्ट्रीय आदान-प्रदान का विस्तार विश्व व्यापार संगठन के वर्तमान नियमों से कहीं अधिक तेज़ी से हुआ है। परिणामस्वरूप सीमापार प्रौद्योगिकी के संचालन और नियमन को लेकर अनिश्चितता उत्पन्न हो गई है। इसके अतिरिक्त, पर्यावरणीय संरक्षण तथा श्रमिक अधिकार ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय बन गए हैं, जहाँ पारंपरिक मुक्त व्यापार की अवधारणाएँ नई नैतिक तथा पर्यावरणीय आवश्यकताओं से टकराती हैं। सीमा पर लगाए जाने वाले पर्यावरणीय कर, हरित सहायता तथा न्यायसंगत व्यापार के मानकों पर चल रही बहसें इस बात का संकेत देती हैं कि विश्व व्यापार संगठन पर सामाजिक और पर्यावरणीय पक्षों को अपने ढाँचे में समाहित करने का निरंतर दबाव बढ़ रहा है।

संस्थागत स्तर पर भी विश्व व्यापार संगठन का विवाद निपटान तंत्र गंभीर संकट का सामना कर रहा है। वर्ष 2019 से अपीलीय निकाय में न्यायाधीशों की नियुक्ति न होने के कारण यह प्रभावी रूप से कार्य नहीं कर पा रहा है। इसका प्रमुख कारण संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा इसकी कार्यप्रणाली और निर्णयों का विरोध रहा है। परिणामस्वरूप व्यापारिक नियमों के प्रभावी पालन में कमी आई है तथा बहुपक्षीय व्यवस्था के प्रति विश्वास भी कमजोर हुआ है। इसी के साथ क्षेत्रीय तथा द्विपक्षीय व्यापारिक समझौतों की बढ़ती संख्या यह दर्शाती है कि अनेक देश विश्व व्यापार संगठन की सर्वसम्मति पर आधारित व्यवस्था के स्थान पर वैकल्पिक मार्ग अपना रहे हैं।

विकासशील देशों के लिए विश्व व्यापार संगठन का भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि व्यापारिक उदारीकरण और विकास के बीच अधिक न्यायसंगत संतुलन स्थापित किया जा सके। अनेक विशेषज्ञों का मत है कि विकासशील देशों की संरचनात्मक सीमाओं को ध्यान में रखते हुए उनके लिए विशेष और पृथक व्यवहार के प्रावधान किए जाने चाहिए। साथ ही बौद्धिक संपदा अधिकारों के पालन में अधिक लचीलापन तथा वैश्विक मूल्य शृंखलाओं में उनकी अधिक प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। संगठन की निर्णय-प्रक्रिया में भी व्यापक सहभागिता और वास्तविक समावेशिता स्थापित करना समय की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है।

संक्षेप में, विश्व व्यापार संगठन ने वैश्विक व्यापार के विस्तार तथा मुक्त व्यापार के नियमों को संस्थागत स्वरूप प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। किंतु प्रौद्योगिकी के तीव्र परिवर्तन, पर्यावरणीय संकट तथा बढ़ती आर्थिक असमानता जैसी नई चुनौतियों के अनुरूप स्वयं को ढालना उसके लिए अनिवार्य है। इन्हीं परिवर्तनों के अनुरूप उसका विकास और सुधार भविष्य में उसकी प्रासंगिकता तथा प्रभावशीलता का निर्धारण करेगा।

2.5 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था का एक प्रमुख संस्थान है। इसकी स्थापना द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के समय विश्व बैंक के साथ की गई थी। इसका उद्देश्य वैश्विक मुद्रा व्यवस्था में स्थिरता स्थापित करना, संतुलित आर्थिक प्रगति को प्रोत्साहित करना तथा वित्तीय संकटों की स्थिति में सदस्य देशों को सुरक्षा प्रदान करना था। समय के साथ यह संस्था संकटग्रस्त देशों को ऋण उपलब्ध कराने तथा सदस्य राष्ट्रों को आर्थिक नीतियों के विषय में परामर्श देने वाले प्रमुख निकाय के रूप में विकसित हुई है। इसने अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था को स्थिर बनाने तथा देशों के बीच आर्थिक समन्वय को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। साथ ही, ऋण प्रदान करने के साथ जुड़ी कठोर शर्तों तथा निर्णय प्रक्रिया में विकासशील देशों के असमान प्रतिनिधित्व के कारण इसकी निरन्तर आलोचना भी होती रही है।

2.5.1 स्थापना तथा उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की औपचारिक स्थापना सन् 1945 में हुई। इसका उद्भव जुलाई, 1944 में संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यू हैम्पशायर राज्य के ब्रेटन वुड्स सम्मेलन से हुआ था। इस सम्मेलन का उद्देश्य ऐसी युद्धोत्तर आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करना था, जिससे प्रतिस्पर्धात्मक मुद्रा अवमूल्यन, व्यापारिक अवरोध तथा युद्धों के मध्यकाल में उत्पन्न वित्तीय अव्यवस्था को रोका जा सके। यह संस्था दिसम्बर, 1945 में अस्तित्व में आई तथा 1947 में 29 सदस्य देशों के साथ कार्य आरम्भ किया। इसके स्थापना-पत्र में अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग की रूपरेखा निर्धारित की गई थी। उस समय स्थिर विनिमय दर की व्यवस्था अपनाई गई थी, जिसमें विभिन्न देशों की मुद्राओं का मूल्य अमेरिकी डॉलर से निर्धारित रहता था तथा अमेरिकी डॉलर का मूल्य निश्चित दर पर स्वर्ण में परिवर्तित किया जा सकता था।

संस्था के मुख्य उद्देश्य उसके स्थापना-पत्र में स्पष्ट किए गए हैं। इनमें अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को बढ़ावा देना, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संतुलित विस्तार को प्रोत्साहित करना, विनिमय दरों में स्थिरता बनाए रखना, अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान व्यवस्था को सुदृढ़ करना तथा भुगतान संतुलन की कठिनाइयों का सामना कर रहे सदस्य देशों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना सम्मिलित है। प्रत्येक सदस्य देश संस्था में निर्धारित अंशदान देता है। इसी अंशदान के आधार पर उसके मताधिकार, ऋण प्राप्त करने की क्षमता तथा विशेष आहरण अधिकारों में उसका हिस्सा निर्धारित होता है। विशेष आहरण अधिकार संस्था की ऐसी आरक्षित सम्पत्ति है, जिसका उद्देश्य सदस्य देशों के आधिकारिक विदेशी मुद्रा भण्डार को सुदृढ़ करना है। इस प्रकार यह संस्था सदस्य देशों के संयुक्त संसाधनों के आधार पर वैश्विक वित्तीय स्थिरता बनाए रखने का कार्य करती है।

उन्नीस सौ सत्तर के दशक के प्रारम्भ में ब्रेटन वुड्स की स्थिर विनिमय दर व्यवस्था समाप्त होने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने अपनी भूमिका में परिवर्तन किया। अब उसका प्रमुख कार्य स्थिर विनिमय दरों का प्रबन्धन न रहकर परिवर्तनीय विनिमय दर व्यवस्था की स्थिरता पर निगरानी रखना बन गया। इसके अतिरिक्त उसने राष्ट्रीय आर्थिक नीतियों की समीक्षा, विकासशील देशों को तकनीकी सहायता प्रदान करना तथा वित्तीय संकट के समय संकट प्रबन्धन जैसे कार्य भी अपने दायित्वों में सम्मिलित कर लिए। परिणामस्वरूप यह संस्था आधुनिक वैश्वीकरण की आर्थिक नीतियों को दिशा देने वाली प्रमुख संस्था बन गई।

2.5.2 ऋण प्रदान करने की व्यवस्था तथा शर्तें

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का सबसे प्रमुख कार्य उन सदस्य देशों को अल्पकालीन तथा मध्यम अवधि की वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना है, जो भुगतान संतुलन संकट का सामना कर रहे होते हैं। ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब कोई देश अपने बाह्य भुगतान दायित्वों को पूरा करने में असमर्थ हो जाता है। इस प्रकार की वित्तीय सहायता का उद्देश्य संबंधित देश की अर्थव्यवस्था को स्थिर बनाना तथा वित्तीय संकट से उबारना होता है। निवेशकों का विश्वास पुनः स्थापित करने तथा संकट के प्रभाव को क्षेत्रीय अथवा वैश्विक स्तर पर फैलने से रोकने के लिए अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष कार्य करता है। कोष मुख्यतः सदस्य देशों के अंशदान से संसाधन जुटाता है, जिनकी पूर्ति आवश्यकतानुसार उधार संबंधी व्यवस्थाओं, जैसे नई उधार व्यवस्था तथा सामान्य उधार व्यवस्था, के माध्यम से भी की जाती है।

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से वित्तीय सहायता प्राप्त करने के लिए सदस्य देशों को कुछ विशिष्ट नीतिगत शर्तों को स्वीकार करना पड़ता है, जिनका उद्देश्य उनकी व्यापक आर्थिक असंतुलन की मूल समस्याओं का समाधान करना होता है। इन शर्तों में सामान्यतः मुद्रा आपूर्ति पर नियंत्रण, वित्तीय अनुशासन (सरकारी व्यय और राजकोषीय घाटे में कमी), विनिमय दर में सुधार तथा व्यापार और निवेश व्यवस्था का उदारीकरण सम्मिलित होता है। इन उपायों का उद्देश्य आर्थिक स्थिरता स्थापित करना और दीर्घकालीन आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना है। तथापि, व्यवहार में ये उपाय अनेक बार विवादास्पद सिद्ध हुए हैं। उन्नीस सौ अस्सी और उन्नीस सौ नब्बे के दशकों में अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा लैटिन अमेरिका, अफ्रीका तथा दक्षिण एशिया जैसे क्षेत्रों में संचालित संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों की आलोचना इस आधार पर की गई कि उन्होंने सामाजिक कल्याण की अपेक्षा वित्तीय कठोरता और बाज़ार के उदारीकरण को अधिक महत्त्व दिया। परिणामस्वरूप अनेक देशों में सार्वजनिक सेवाओं में कमी, बेरोज़गारी में वृद्धि तथा असमानता का विस्तार हुआ, यद्यपि अल्पकाल में व्यापक आर्थिक संतुलन प्राप्त हुआ।

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष विभिन्न आवश्यकताओं के अनुरूप अनेक प्रकार की ऋण सुविधाएँ प्रदान करता है। अस्थायी आर्थिक संकटों के लिए स्थायी व्यवस्था, दीर्घकालीन आर्थिक समायोजन के लिए विस्तारित कोष सुविधा, तथा निम्न आय वाले देशों के लिए गरीबी उन्मूलन और विकास न्यास जैसी रियायती ऋण व्यवस्थाएँ उपलब्ध हैं। दो हजार आठ के वैश्विक वित्तीय संकट तथा वैश्विक महामारी जैसी आपात स्थितियों में कोष ने त्वरित वित्तीय सहायता साधन और त्वरित ऋण सुविधा के माध्यम से अपेक्षाकृत कम शर्तों पर शीघ्र सहायता भी प्रदान की। वित्तीय सहायता के अतिरिक्त, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष अपने सदस्य देशों की आर्थिक नीतियों का नियमित मूल्यांकन करता है तथा वित्तीय, मौद्रिक और राजकोषीय विषयों पर तकनीकी परामर्श भी देता है।

यद्यपि ये व्यवस्थाएँ वैश्विक आर्थिक स्थिरता बनाए रखने तथा प्रतिस्पर्धात्मक मुद्रा अवमूल्यन को रोकने में सहायक हैं, तथापि इनसे कोष के प्रमुख अंशधारक देशों के हाथों में पर्याप्त प्रभाव भी केंद्रित हो जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय संघ, जापान तथा चीन के पास संयुक्त रूप से मतदान शक्ति का अत्यधिक बड़ा भाग है, जिसके कारण संस्था की प्राथमिकताओं तथा सुधारों की दिशा पर उनका निर्णायक प्रभाव बना रहता है।

2.5.3 सुधार तथा समकालीन आलोचना

समय के साथ अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष को उसकी शासन व्यवस्था, नीतिगत निर्देशों तथा सामाजिक प्रभावों के कारण व्यापक आलोचना का सामना करना पड़ा है। विकासशील देशों का मत है कि मतदान शक्ति और प्रतिनिधित्व आज भी अत्यधिक असमान हैं, क्योंकि सदस्य देशों के अंश मुख्यतः द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की आर्थिक परिस्थितियों पर आधारित हैं, न कि वर्तमान वैश्विक आर्थिक वास्तविकताओं पर। चीन, भारत, ब्राज़ील तथा

अफ्रीकी देशों सहित उभरती अर्थव्यवस्थाओं को अधिक प्रतिनिधित्व देने की माँग लगातार बढ़ी है, किन्तु सुधारों की प्रक्रिया अत्यन्त धीमी रही है और अनेक बार विकसित औद्योगिक देशों द्वारा अवरुद्ध कर दी जाती है।

नीतिगत स्तर पर भी अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की इस कारण आलोचना की जाती है कि वह सभी देशों के लिए एक ही प्रकार की नीति अपनाने पर बल देता है, जिसे सामान्यतः वाशिंगटन सहमति से जोड़ा जाता है। ऋण प्रदान करने की शर्त के रूप में वित्तीय कठोरता, निजीकरण तथा विनियमन में कमी पर बल देने के कारण उस पर यह आरोप लगाया गया है कि इससे सहायता प्राप्त देशों की शासन क्षमता तथा सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था कमज़ोर हुई है। अनेक अर्थशास्त्रियों और नागरिक संगठनों का मत है कि ये नीतियाँ मानव कल्याण की अपेक्षा बाज़ार के विश्वास को अधिक महत्त्व देती हैं, जिसके परिणामस्वरूप गरीबी कम होने के स्थान पर और अधिक गहरी हो जाती है। उन्नीस सौ सत्तानवे–अट्ठानवे का एशियाई वित्तीय संकट इस आलोचना का प्रमुख उदाहरण माना जाता है और उसके पश्चात् अर्जेंटीना तथा ग्रीस में उत्पन्न वित्तीय संकटों ने इस विषय पर पुनः व्यापक बहस को जन्म दिया कि क्या अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष वित्तीय अस्थिरता का समाधान करने के स्थान पर उसे और अधिक बढ़ाने में योगदान देता रहा है।

लगातार हुई समीक्षा और आलोचना के प्रत्युत्तर में अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने अपने दर्शन तथा कार्यप्रणाली में सुधार करने का प्रयास किया है। हाल की पहलों में निर्धनता उन्मूलन, समावेशी विकास तथा ऋण कार्यक्रमों के अंतर्गत सामाजिक व्यय की न्यूनतम सीमा पर विशेष बल दिया गया है। जलवायु-अनुकूलन क्षमता, लैंगिक समानता तथा असमानता के विश्लेषण के प्रति कोष की बढ़ती प्रतिबद्धता व्यापक आर्थिक स्थिरता की अधिक समग्र समझ को दर्शाती है। वर्ष 2010 तथा 2016 में शासन-संबंधी सुधारों के माध्यम से उभरती अर्थव्यवस्थाओं का प्रतिनिधित्व कुछ बढ़ाया गया, यद्यपि मतदान शक्ति में असंतुलन अभी भी बना हुआ है। इसके अतिरिक्त, वर्ष 2020 की वैश्विक महामारी के दौरान विशेष आहरण अधिकारों का लगभग 650 अरब अमेरिकी डॉलर के मूल्य तक विस्तार यह दर्शाता है कि अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष वैश्विक अर्थव्यवस्था में अत्यंत शीघ्रता से तरलता का संचार करने में सक्षम है।

इन सुधारों के बावजूद अनेक आलोचकों का मत है कि वास्तविक परिवर्तन के लिए अधिक गहन संरचनात्मक सुधार आवश्यक हैं, जिनमें निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में अधिक पारदर्शिता, पश्चिमी प्रभुत्व का ह्रास तथा ऋणी राष्ट्रों के हितों की अधिक सुदृढ़ सुरक्षा सम्मिलित है। इस प्रकार वित्तीय अनुशासन और सामाजिक न्याय के मध्य विद्यमान तनाव आज भी अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के मूल उद्देश्य के केंद्र में बना हुआ है। फिर भी संकट-प्रबंधन, व्यापक आर्थिक समन्वय तथा वैश्विक वित्तीय स्थिरता की रक्षा में इसकी भूमिका आज भी अपरिहार्य है। अपने तकनीकी दायित्वों और नैतिक उत्तरदायित्वों के मध्य संतुलन स्थापित करना इक्कीसवीं शताब्दी में अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती बना हुआ है।

2.6 संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (UNESCO)

संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन संयुक्त राष्ट्र प्रणाली की सबसे सक्रिय बौद्धिक तथा मानक-निर्धारक संस्थाओं में से एक है। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त स्थापित यह संगठन इस विश्वास का प्रतीक है कि स्थायी शान्ति और सतत विकास केवल राजनीतिक अथवा सैन्य व्यवस्थाओं के आधार पर नहीं, बल्कि एकता, ज्ञान तथा सांस्कृतिक समझ के आधार पर ही स्थापित किए जा सकते हैं। इसका ध्येय-वाक्य—"मनुष्यों के मन में शान्ति का निर्माण करना"—इस विचार को अभिव्यक्त करता है कि शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति और संचार मानव प्रगति तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग की आधारशिलाएँ हैं। पेरिस स्थित मुख्यालय तथा विश्वभर में फैले क्षेत्रीय कार्यालयों के माध्यम से कार्य करते हुए यह संगठन मानवता के ज्ञान, सृजनशीलता और अंतर-सांस्कृतिक संवाद के साझा प्रयास का प्रतीक बन चुका है।

2.6.1 उद्देश्य तथा प्रमुख कार्यक्षेत्र

इस संगठन की स्थापना 16 नवम्बर 1945 को इसके संविधान पर 37 देशों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने के उपरान्त हुई। वर्ष 1946 में यह नवगठित संयुक्त राष्ट्र की प्रारम्भिक विशिष्ट संस्थाओं में से एक के रूप में औपचारिक रूप से कार्यरत हुआ। इसका मूल उद्देश्य सभी के लिए शिक्षा, वैज्ञानिक सहयोग, सांस्कृतिक विकास तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को अंतरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की नैतिक आधारशिलाओं के रूप में विकसित करना था। वित्तीय अथवा राजनीतिक संस्थाओं के विपरीत, इस संगठन का दायित्व मुख्यतः बौद्धिक तथा मानक-निर्धारक है। इसका उद्देश्य उन मूल्यों, नैतिक मानकों तथा ज्ञान-प्रणालियों का विकास करना है जो वैश्विक समाज का मार्गदर्शन करती हैं।इस संगठन के प्रमुख कार्यक्षेत्र चार मुख्य क्षेत्रों में विभाजित हैं—शिक्षा, प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक एवं मानव विज्ञान तथा संस्कृति एवं संचार। शिक्षा के क्षेत्र में यह संगठन सार्वभौमिक शिक्षा, साक्षरता, शिक्षक-प्रशिक्षण तथा पाठ्यचर्या के विकास को प्रोत्साहित करता है।

2.6.2 शिक्षा, संस्कृति तथा विरासत संरक्षण में भूमिका

शिक्षा यूनेस्को की ऐतिहासिक पहचान का मूल आधार है। यह संस्था शिक्षा को प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक मानवाधिकार तथा व्यक्तिगत सशक्तिकरण और सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख साधन मानती है। निरक्षरता उन्मूलन के प्रारम्भिक अभियानों से लेकर समावेशी तथा आजीवन शिक्षा पर वर्तमान बल तक, यूनेस्को ने अंतरराष्ट्रीय शिक्षा की प्राथमिकताओं को दिशा प्रदान की है। आजीवन शिक्षा के लिए यूनेस्को संस्थान तथा वैश्विक शिक्षा अनुश्रवण प्रतिवेदन राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के निर्माण हेतु आवश्यक आँकड़े और मार्गदर्शन उपलब्ध कराते हैं। यूनेस्को की शिक्षा–२०३० कार्य रूपरेखा शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर समान अवसर, उच्च गुणवत्ता तथा उपयोगिता सुनिश्चित करने के वैश्विक संकल्पों के अनुरूप है। हाल के वर्षों में इसने सतत विकास हेतु शिक्षा तथा वैश्विक नागरिकता शिक्षा को विशेष प्रोत्साहन दिया है, जिनका उद्देश्य नई पीढ़ी में पर्यावरणीय चेतना तथा अंतरसांस्कृतिक सहिष्णुता का विकास करना है।

सांस्कृतिक क्षेत्र में यूनेस्को का प्रभाव विशेष रूप से उसके विश्व विरासत कार्यक्रम के माध्यम से दिखाई देता है, जिसकी स्थापना विश्व की सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक विरासत के संरक्षण संबंधी अभिसमय (१९७२) के अंतर्गत हुई। इस पहल के माध्यम से असाधारण सार्वभौमिक महत्त्व वाले स्थलों—जैसे स्मारकों, नगरों, प्राकृतिक दृश्यों तथा प्राकृतिक संरक्षित क्षेत्रों—की पहचान कर उनका संरक्षण किया जाता है। वर्तमान में ऐसे ग्यारह सौ से अधिक स्थल मानवता की सामूहिक धरोहर का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें मिस्र के पिरामिड, ताजमहल तथा ग्रेट बैरियर रीफ जैसे प्रसिद्ध स्थल सम्मिलित हैं। मूर्त विरासत के संरक्षण के साथ-साथ यूनेस्को अमूर्त सांस्कृतिक विरासत—जैसे मौखिक परम्पराएँ, प्रदर्शन कलाएँ तथा सामाजिक प्रथाएँ—के संरक्षण को भी २००३ के अभिसमय के अंतर्गत बढ़ावा देता है। इन प्रयासों के माध्यम से यूनेस्को संस्कृति को केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा, पहचान और सृजनशीलता का जीवंत आधार मानता है।

विज्ञान तथा संचार के क्षेत्र में भी यूनेस्को ने अनेक महत्त्वपूर्ण पहलें की हैं। इसने अंतरराष्ट्रीय जलविज्ञान कार्यक्रम तथा शांति और विकास के लिए विश्व विज्ञान दिवस जैसी योजनाओं को बढ़ावा दिया है, जिनके माध्यम से वैज्ञानिक ज्ञान को नैतिकता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ जोड़ा गया है। इसके अतिरिक्त, यूनेस्को ने पत्रकारिता की स्वतंत्रता को सुदृढ़ करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसी उद्देश्य से प्रत्येक वर्ष विश्व पत्रकारिता स्वतंत्रता दिवस (३ मई) मनाया जाता है तथा यूनेस्को–गिलर्मो कैनो विश्व पत्रकारिता स्वतंत्रता पुरस्कार प्रदान किया जाता है।

2.6.3 यूनेस्को और वैश्विक सांस्कृतिक संवाद

तकनीकी सहयोग से आगे बढ़कर, यूनेस्को नैतिक चिंतन और अंतरसांस्कृतिक संवाद को प्रोत्साहित करने हेतु विचारों की प्रयोगशाला के रूप में कार्य करता है। प्रवासन, वैश्विक संचार माध्यमों तथा सांस्कृतिक समिश्रण के इस युग में पहचान और सांस्कृतिक विरासत से जुड़े तनाव अनेक बार तीव्र हो गए हैं। यूनेस्को सांस्कृतिक बहुलता के प्रति सम्मान को शांति और पारस्परिक समझ का आधार बनाकर इन चुनौतियों का समाधान करने का प्रयास करता है। सांस्कृतिक विविधता पर सार्वभौम घोषणा (2001) यह प्रतिपादित करती है कि सांस्कृतिक विविधता मानवता के लिए उतनी ही आवश्यक है, जितनी प्रकृति के लिए जैव-विविधता। साथ ही, इसे वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों के हित में संरक्षित किए जाने योग्य मानवता की साझा धरोहर माना गया है।

सांस्कृतिक विविधता के लिए वैश्विक गठबंधन तथा सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों की विविधता के संरक्षण एवं संवर्धन संबंधी अभिसमय (2005) जैसी पहलों के माध्यम से यूनेस्को विभिन्न संस्कृतियों के बीच निष्पक्ष आदान-प्रदान का मंच उपलब्ध कराता है तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक उद्योगों को वैश्विक संचार माध्यमों के बड़े समूहों के वर्चस्व से संरक्षण प्रदान करता है। यह विकासशील देशों में सृजनात्मक अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करता है, अनुवाद तथा ज्ञान के आदान-प्रदान को बढ़ावा देता है और आभासी जगत में बहुभाषिकता का संवर्धन करता है। अंतरसांस्कृतिक संवाद के प्रति इसकी प्रतिबद्धता युवा कार्यक्रमों, विश्वविद्यालयी नेटवर्कों तथा ऐसे गैर-सरकारी संगठनों के साथ सहभागिता तक विस्तृत है, जो सहिष्णुता, नैतिक चिंतन और वैश्विक नागरिकता को प्रोत्साहित करते हैं।

यूनेस्को संकटग्रस्त भाषाओं के संरक्षण तथा स्वदेशी ज्ञान-परंपराओं के संवर्धन में भी अग्रणी भूमिका निभाता है। वर्ष 2022–2032 को 'स्वदेशी भाषाओं का अंतरराष्ट्रीय दशक' घोषित किया जाना भाषा, संस्कृति और पहचान के मध्य गहरे संबंध को रेखांकित करता है तथा यह स्पष्ट करता है कि भाषायी विविधता का संरक्षण सतत विकास का अभिन्न अंग है। इस दृष्टि से यूनेस्को वैश्वीकरण के नैतिक विवेक के रूप में कार्य करता है और अंतरराष्ट्रीय समुदाय को यह स्मरण कराता है कि शांति और सतत विकास की स्थापना में सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयाम आर्थिक प्रगति जितने ही महत्त्वपूर्ण हैं।

इस प्रकार, यूनेस्को का कार्य संयुक्त राष्ट्र, विश्व व्यापार संगठन तथा अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे वैश्विक संस्थानों के प्रयासों का पूरक है। यह मानव सहयोग के बौद्धिक, नैतिक और सांस्कृतिक आधारों को सुदृढ़ करता है। इसकी दृष्टि यह प्रतिपादित करती है कि स्थायी शांति केवल संधियों और संस्थाओं पर ही नहीं, बल्कि लोगों के विचारों, मूल्यों और पारस्परिक सहानुभूति पर भी निर्भर करती है।

2.7 वैश्विक संस्थानों का तुलनात्मक महत्त्व

संयुक्त राष्ट्र (यूएन), विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ), अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) तथा संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) वैश्विक शासन-व्यवस्था में भिन्न-भिन्न, किन्तु परस्पर संबद्ध भूमिकाएँ निभाते हैं। यद्यपि प्रत्येक संस्था की स्थापना राजनीतिक, आर्थिक, वित्तीय अथवा सांस्कृतिक जैसे विशिष्ट क्षेत्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की गई थी, तथापि सामूहिक रूप से ये सभी युद्धोत्तर अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था की संस्थागत आधारशिला का निर्माण करती हैं।

संयुक्त राष्ट्र इन संस्थाओं में सर्वाधिक समावेशी तथा राजनीतिक दृष्टि से सर्वाधिक प्रामाणिक संस्था है। यह सामूहिक सुरक्षा तथा बहुपक्षीय कूटनीति के सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी वैधता लगभग सार्वभौमिक सदस्यता तथा उसके व्यापक कार्यक्षेत्र से प्राप्त होती है, जिसमें शान्ति स्थापना, मानवाधिकारों का संरक्षण, मानवीय सहायता तथा विकास सम्मिलित हैं। संयुक्त राष्ट्र वैश्विक शासन के मानक-निर्धारक केन्द्र के रूप में कार्य करता है। यह

सार्वभौमिक मूल्यों का प्रतिपादन करता है, विशिष्ट अभिकरणों के कार्यों का समन्वय करता है तथा ऐसा मंच उपलब्ध कराता है जहाँ शक्तिशाली और छोटे सभी राष्ट्र विश्व की कार्यसूची के निर्माण में समान रूप से भाग ले सकते हैं। तथापि, सदस्य राष्ट्रों की सर्वसम्मति पर इसकी निर्भरता तथा सुरक्षा परिषद् के पाँच स्थायी सदस्यों का निरन्तर प्रभुत्व वैश्विक लोकतन्त्र की संरचनात्मक सीमाओं को स्पष्ट करता है। फिर भी नैतिक मानकों की स्थापना तथा वैश्विक वैधता को संगठित करने की इसकी क्षमता इसे उन संस्थाओं से भिन्न बनाती है, जिनका मुख्य झुकाव आर्थिक अथवा वित्तीय विषयों की ओर है।

इसके विपरीत, विश्व व्यापार संगठन वैश्विक अर्थव्यवस्था की विधिक तथा नियामक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी प्रमुख विशेषता इसके स्पष्ट नियमों तथा विवाद-निपटान प्रणाली में निहित है, जिसने लगभग तीन दशकों से अन्तरराष्ट्रीय बाज़ारों को स्थिरता और पूर्वानुमेयता प्रदान की है। दायित्वों का विधिवत् निर्धारण तथा संरक्षणवादी प्रवृत्तियों में कमी लाकर इसने सीमापार व्यापार तथा उत्पादन तन्त्रों के व्यापक विस्तार को प्रोत्साहित किया है। किन्तु उदारीकरण पर इसका अत्यधिक बल अनेक बार विकास तथा पर्यावरण सम्बन्धी प्राथमिकताओं से टकराता है, जिससे मुक्त व्यापार और सामाजिक न्याय के मध्य विद्यमान तनाव उजागर होता है। संयुक्त राष्ट्र की व्यापक मानक-निर्धारण क्षमता की तुलना में विश्व व्यापार संगठन का कार्यक्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित, किन्तु अधिक प्रभावी विधिक ढाँचे के भीतर संचालित होता है। इसकी प्रमुख शक्ति तकनीकी दक्षता है, जबकि इसकी प्रमुख चुनौती तीव्र गति से डिजिटलीकृत होती अर्थव्यवस्था में समावेशिता तथा अनुकूलनशीलता बनाए रखना है।

अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष वैश्विक वित्तीय शासन के केन्द्र में विशिष्ट स्थान रखता है। इसका महत्त्व वित्तीय संकटों के प्रबन्धन, समष्टि आर्थिक पर्यवेक्षण तथा वित्तीय अस्थिरता से जूझ रहे देशों को तरल वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने में निहित है। संयुक्त राष्ट्र अथवा विश्व व्यापार संगठन के विपरीत, यह ऋण प्रदान करने की शर्तों के माध्यम से राष्ट्रीय नीतियों पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है, जिससे इसे पर्याप्त शक्ति भी प्राप्त होती है और विवाद भी उत्पन्न होते हैं। विकासशील देशों के लिए इसकी सहायता आपातकालीन परिस्थितियों में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है, किन्तु अनेक बार यह राजनीतिक दृष्टि से हस्तक्षेपकारी भी प्रतीत होती है, क्योंकि यह प्रायः मितव्ययिता तथा संरचनात्मक सुधारों को अनिवार्य बनाती है। विश्व व्यापार संगठन जहाँ मुख्यतः नियमों के निर्माण का कार्य करता है, वहीं अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की भूमिका प्रत्यक्ष हस्तक्षेपकारी है। इसका प्रभाव सन्धियों के माध्यम से नहीं, बल्कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं की राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियों में परिवर्तन के माध्यम से अनुभव किया जाता है।

इस बीच, संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन वैश्विक शासन के बौद्धिक तथा नैतिक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है। इसका प्रभाव दण्डात्मक नहीं, बल्कि मानक-निर्धारक है। यह शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति तथा संचार के माध्यम से शान्ति की स्थापना करता है और सहयोग के मानवीय तथा सांस्कृतिक आधारों को सुदृढ़ बनाता है। विश्व व्यापार संगठन तथा अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के आर्थिक दायित्वों के विपरीत, इसका प्रभाव विचारों, मूल्यों तथा दीर्घकालिक सामाजिक परिवर्तन के रूप में प्रकट होता है। यह अन्य संस्थाओं का पूरक बनते हुए इस तथ्य पर बल देता है कि वास्तविक प्रगति समग्र होनी चाहिए, जिसमें भौतिक विकास के साथ पारस्परिक समझ तथा सांस्कृतिक सम्मान का समुचित समन्वय हो। विश्व धरोहर, सांस्कृतिक विविधता तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से सम्बन्धित इसके अभिसमय उस नैतिक आधार को सुदृढ़ करते हैं, जिस पर विश्व की राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्थाएँ आधारित हैं।

तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर ये संस्थाएँ परस्पर निर्भरता की बहुस्तरीय व्यवस्था का निर्माण करती हैं, जिसमें प्रत्येक संस्था अन्य संस्थाओं की सीमाओं की पूर्ति करती है। संयुक्त राष्ट्र वैधता और समन्वय प्रदान करता है; विश्व

व्यापार संगठन नियमों के पालन पर आधारित आर्थिक व्यवस्था स्थापित करता है; अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष वित्तीय प्रवाह को स्थिर बनाए रखता है; तथा संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन शांति के लिए आवश्यक नैतिक तथा शैक्षिक आधार को सुदृढ़ करता है। इनका परस्पर संबंध यह स्पष्ट करता है कि वैश्विक शासन किसी एक सर्वोच्च संस्था का कार्य नहीं, बल्कि ऐसी पूरक संस्थाओं का समूह है जो शक्ति, समृद्धि और मूल्यों के मध्य संतुलन स्थापित करती हैं। फिर भी यह संतुलन अत्यंत नाज़ुक है। कार्यक्षेत्रों का परस्पर अतिक्रमण, वित्तीय सीमाएँ तथा भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धाएँ अनेक बार सामंजस्य के स्थान पर विखंडन को जन्म देती हैं।

वैश्विक दक्षिण, विशेषकर भारत, ब्राज़ील तथा दक्षिण अफ्रीका जैसे उभरते देशों के लिए, ये संस्थाएँ अवसरों के साथ-साथ अनेक बाधाएँ भी प्रस्तुत करती हैं। इनमें सहभागिता से इन देशों को नियम-निर्माण को प्रभावित करने तथा वैश्विक कार्यसूची के निर्धारण में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने का अवसर मिलता है, किन्तु असमान मतदान व्यवस्था तथा संसाधनों पर निर्भरता अब भी उनकी प्रभावशीलता को सीमित करती है। इसी कारण सुरक्षा परिषद् की सदस्यता का विस्तार, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के अंशों का अधिक लोकतांत्रिक निर्धारण, विश्व व्यापार संगठन के नियमों में सुधार तथा संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन की सांस्कृतिक दृष्टि का उपनिवेशवादी प्रभावों से मुक्त होना जैसे समकालीन सुधार-विमर्श, वैश्विक संस्थाओं को वर्तमान यथार्थ के अनुरूप बनाने के प्रयासों का प्रतिबिंब हैं।

संक्षेप में, इन संस्थाओं का तुलनात्मक महत्त्व उनकी उस संयुक्त क्षमता में निहित है जिसके माध्यम से वे अपने-अपने पूरक क्षेत्रों द्वारा परस्पर निर्भरता का प्रभावी संचालन करती हैं—शांति एवं वैश्विक शासन (संयुक्त राष्ट्र), व्यापार का विनियमन (विश्व व्यापार संगठन), वित्तीय स्थिरता (अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष) तथा सांस्कृतिक एवं शैक्षिक जागरण (संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन)। सामूहिक रूप से ये संस्थाएँ सहयोग और एकजुटता के आदर्शों को संस्थागत व्यवहार में परिणत करती हैं। इनकी प्रभावशीलता अंततः इस बात पर निर्भर करती है कि वे शक्ति का वितरण कितनी निष्पक्षता से करती हैं, परिवर्तन के अनुरूप स्वयं को कितनी लचीलापन से ढालती हैं तथा उन सार्वभौमिक मूल्यों की रक्षा कितनी दृढ़ता से करती हैं जिनके आधार पर उनका अस्तित्व उचित ठहरता है। आज का विश्व भले ही अधिक विभाजित दिखाई देता हो, किन्तु वह परस्पर जुड़ाव से अलग नहीं किया जा सकता।

2.8 सारांश

इस इकाई में उन प्रमुख पक्षों तथा संस्थाओं का अध्ययन किया गया है जो समकालीन अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था का निर्माण करती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वैश्विक शासन राजनीतिक, आर्थिक, वित्तीय तथा सांस्कृतिक सहयोग के परस्पर जुड़े हुए तंत्रों के माध्यम से संचालित होता है। यद्यपि संप्रभु राष्ट्र विश्व राजनीति के केंद्र में बने हुए हैं, फिर भी शांति, सुरक्षा, व्यापार, विकास तथा जलवायु परिवर्तन जैसी वैश्विक चुनौतियों की बढ़ती जटिलता ने बहुपक्षीय संस्थाओं की आवश्यकता को अनिवार्य बना दिया है। सामूहिक रूप से संयुक्त राष्ट्र, विश्व व्यापार संगठन, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन इस व्यवस्था के संस्थागत स्तंभ हैं।

संयुक्त राष्ट्र सामूहिक कार्यवाही के लिए वैधता, समन्वय तथा नैतिक आधार प्रदान करता है। अपनी विभिन्न संस्थाओं और कार्यक्रमों के माध्यम से उसने शांति स्थापना, मानवीय सहायता, मानवाधिकारों की रक्षा तथा सतत विकास को आगे बढ़ाया है। विश्व व्यापार संगठन बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था का संरक्षक है। यह व्यापारिक समझौतों का निर्माण तथा व्यापारिक विवादों का समाधान करता है, किन्तु समावेशिता, सुधार तथा डिजिटल एवं पर्यावरणीय परिवर्तनों के अनुरूप स्वयं को ढालने जैसी चुनौतियों का सामना भी करता है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष संकट के समय वित्तीय सहायता तथा नीतिगत मार्गदर्शन प्रदान कर वित्तीय स्थिरता बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है,

यद्यपि इसके शासन, शर्तों तथा सामाजिक प्रभावों को लेकर विवाद अभी भी बने हुए हैं। संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति तथा संचार को प्रोत्साहित करके इन संस्थाओं का पूरक कार्य करता है और यह रेखांकित करता है कि वैश्विक प्रगति का आधार नैतिक मूल्य तथा विभिन्न संस्कृतियों के बीच परस्पर समझ होना चाहिए। पेज २५

साथ मिलकर ये संस्थाएँ वैश्वीकरण की बहुआयामी प्रकृति को स्पष्ट करती हैं, जहाँ राजनीतिक अधिकारिता, आर्थिक एकीकरण, वित्तीय विनियमन तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान परस्पर जुड़े हुए हैं। तथापि, इनकी प्रभावशीलता न्यायसंगत प्रतिनिधित्व, लचीलापन तथा पारस्परिक विश्वास पर निर्भर करती है। भारत सहित वैश्विक दक्षिण के देशों के लिए इन संस्थाओं में सक्रिय सहभागिता एक ओर प्रभाव स्थापित करने का अवसर प्रदान करती है, तो दूसरी ओर अधिक समावेशी विश्व व्यवस्था के निर्माण की जिम्मेदारी भी सौंपती है। अंततः, ऐसी संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन यह सिद्ध करता है कि वैश्विक शासन एक गतिशील प्रक्रिया है, जिसमें विविध पक्षकार शक्ति, समृद्धि तथा मानवीय गरिमा के मध्य संतुलन स्थापित करने के लिए निरंतर विचार-विमर्श और सहमति का प्रयास करते हैं।

2.9 शब्दावली

- **वैश्विक शासन :** राष्ट्रीय सीमाओं से परे कार्य करने वाली संस्थाओं, मानकों तथा तंत्रों के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय विषयों का सामूहिक संचालन।
- **संयुक्त राष्ट्र :** वर्ष 1945 में स्थापित प्रमुख अंतरराष्ट्रीय संस्था, जिसका उद्देश्य विश्व शांति बनाए रखना, विकास को प्रोत्साहित करना तथा मानवाधिकारों की रक्षा करना है।
- **सुरक्षा परिषद :** संयुक्त राष्ट्र का प्रमुख निकाय, जो अंतरराष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के लिए उत्तरदायी है। इसमें पाँच स्थायी तथा दस अस्थायी सदस्य होते हैं।
- **विश्व व्यापार संगठन :** वर्ष 1995 में स्थापित वैश्विक संस्था, जिसका उद्देश्य व्यापार का विनियमन करना, व्यापारिक समझौतों का पालन सुनिश्चित करना तथा सदस्य देशों के बीच व्यापारिक विवादों का निपटारा करना है।
- **प्रशुल्क एवं व्यापार संबंधी सामान्य समझौता :** वर्ष 1947 का वह अंतरराष्ट्रीय ढाँचा, जिसने विश्व व्यापार के उदारीकरण का मार्ग प्रशस्त किया और जिसके आधार पर बाद में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई।
- **विवाद निपटान निकाय :** विश्व व्यापार संगठन का वह तंत्र, जो व्यापारिक विवादों का विधिक तथा बाध्यकारी प्रक्रिया के माध्यम से समाधान करता है।
- **अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष :** वर्ष 1945 में स्थापित वित्तीय संस्था, जिसका उद्देश्य मौद्रिक स्थिरता बनाए रखना, वित्तीय संकटों की रोकथाम करना तथा भुगतान संतुलन संबंधी कठिनाइयों से जूझ रहे देशों को सहायता प्रदान करना है।
- **अंशदान निर्धारण प्रणाली :** अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष में किसी सदस्य देश के वित्तीय अंशदान तथा मताधिकार का आधार।

- **शर्ताधारित सहायता :** अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा ऋण अथवा वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए आवश्यक नीतिगत सुधारों की अनिवार्य शर्तें।

- **संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) :** संयुक्त राष्ट्र का एक विशिष्ट अभिकरण (स्थापना–1945), जो शिक्षा, विज्ञान, संस्कृति तथा संचार के माध्यम से शान्ति और अंतरसांस्कृतिक संवाद को बढ़ावा देता है।

- **विश्व धरोहर अभिसमय :** सन् 1972 का यूनेस्को अभिसमय, जिसका उद्देश्य असाधारण सार्वभौमिक महत्त्व वाले सांस्कृतिक तथा प्राकृतिक धरोहर स्थलों की पहचान, संरक्षण तथा संवर्धन करना है।

- **सौम्य शक्ति :** बल अथवा दबाव के स्थान पर आकर्षण, संस्कृति तथा मूल्यों के माध्यम से दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता।

- **बहुपक्षवाद :** अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के माध्यम से तीन या अधिक राज्यों के बीच नीतियों का समन्वय करने की व्यवस्था।

2.10 अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वैश्विक कर्ता शब्द की परिभाषा दीजिए तथा वर्तमान अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में उसके महत्त्व की व्याख्या कीजिए।
2. संयुक्त राष्ट्र के छह प्रमुख अंग कौन-कौन से हैं?
3. संयुक्त राष्ट्र के मानक-निर्धारण संबंधी कार्यों तथा विश्व व्यापार संगठन के विनियामक कार्यों में अंतर स्पष्ट कीजिए।
4. अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की सशर्त ऋण नीति का उद्देश्य क्या है?
5. सांस्कृतिक संरक्षण को बढ़ावा देने वाले यूनेस्को के दो प्रमुख अभिसमयों के नाम लिखिए।
6. सौम्य शक्ति से आप क्या समझते हैं? उपयुक्त उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
7. संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में सुधार आवश्यक क्यों माना जाता है?

ख. निबंधात्मक / दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. अंतरराष्ट्रीय शान्ति बनाए रखने तथा सतत विकास को बढ़ावा देने में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका का समालोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. निष्पक्ष व्यापार तथा आर्थिक न्याय को बढ़ावा देने में विश्व व्यापार संगठन की उपलब्धियों और सीमाओं का मूल्यांकन कीजिए।
3. अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की ऋण व्यवस्था तथा उसकी सशर्त नीतियाँ विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को किस प्रकार प्रभावित करती हैं, स्पष्ट कीजिए।

4. वैश्वीकरण के युग में शिक्षा, विज्ञान तथा सांस्कृतिक सहयोग के क्षेत्र में यूनेस्को के योगदान का परीक्षण कीजिए।
5. संयुक्त राष्ट्र, विश्व व्यापार संगठन, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा यूनेस्को के दायित्वों और शासन संरचनाओं की तुलना कीजिए।
6. वैश्विक दक्षिण के हितों का अधिक प्रभावी प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए वैश्विक संस्थाओं में सुधार की चुनौतियों का विश्लेषण कीजिए।

2.11 संदर्भ ग्रंथ

1. Sanjeev Khagram, James Riker and Korthrxu Sikkink (ed.) (2002) Restructuring World Politics: Transnational Social Movements, MN, University of Minnesota Press.
2. Joseph S Nye and John D. Donanu (ed.) (2000) Governance in a Globalizing World, Washington dc, Brooking Institution Press.
3. Ghosh, A. (1998). GLOBALIZATION AND WTO. India Quarterly, 54(3/4), 7–112. http://www.jstor.org/stable/45073136
4. MADAAN, D. K. (2000). WTO AND THE DEVELOPING COUNTRIES. India Quarterly, 56(3/4), 53–60. http://www.jstor.org/stable/45073233
5. D. N. Ghosh. (2002). Globalisation, the IMF and Governance. Economic and Political Weekly, 37(39), 3980–3982. http://www.jstor.org/stable/4412653
6. Kapur, D. (1998). The IMF: A Cure or a Curse? Foreign Policy, 111, 114–129. https://doi.org/10.2307/1149382
7. DUTT, S. (2009). Striving to Promote Shared Values: UNESCO in the Troubled World of the Twenty-first Century. India Quarterly, 65(1), 83–95. http://www.jstor.org/stable/45072914

समकालीन वैश्विक मुद्दे

संरचना

3.1 अधिगम उद्देश्य

3.2 भूमिका – समकालीन मुद्दों की समझ

3.3 वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दे – संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम

3.3.1 वैश्विक ऊष्मीकरण और जलवायु परिवर्तन

3.3.2 जैव विविधता का ह्रास और पारितंत्र का अवनयन

3.3.3 संसाधनों की कमी और सतत विकास

3.3.4 संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की भूमिका

3.4 वैश्विक न्याय

3.4.1 अर्थ तथा दार्शनिक आधार

3.4.2 आर्थिक और सामाजिक आयाम

3.4.3 समानता तथा मानवाधिकारों से संबंधित संस्थाएँ, जनआंदोलन और विमर्श

3.5 अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद

3.5.1 आतंकवाद का विकास और उसके प्रकार

3.5.2 वैश्विक प्रतिक्रियाएँ तथा सुरक्षा रूपरेखाएँ

3.5.3 आतंकवाद, प्रौद्योगिकी तथा मानवाधिकार संबंधी चुनौतियाँ

3.6 वैश्विक मुद्दों का पारस्परिक संबंध

3.7 सारांश

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्न

3.10 संदर्भ ग्रंथ

3.1 अधिगम उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन पूर्ण करने के पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित में सक्षम होंगे—

1. इक्कीसवीं शताब्दी में वैश्विक समुदाय को प्रभावित करने वाले प्रमुख समकालीन मुद्दों की पहचान करना तथा उनका विवेचन करना।
2. जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता के ह्रास तथा संसाधनों की कमी जैसी वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों के कारणों, स्वरूप तथा परिणामों को समझना।

3. पर्यावरणीय शासन के प्रभावी संचालन में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय व्यवस्थाओं की भूमिका का मूल्यांकन करना।

4. वैश्विक न्याय की अवधारणा को परिभाषित कीजिए तथा उसके दार्शनिक, आर्थिक और नैतिक आधारों का समालोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

5. अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद की जड़ों, उसके विकास तथा प्रकारों का विश्लेषण कीजिए और उसके विधिक तथा मानवाधिकार संबंधी प्रभावों को ध्यान में रखते हुए आतंकवाद-निरोध की वैश्विक रणनीतियों का मूल्यांकन कीजिए।

6. वैश्विक पर्यावरणीय, सामाजिक तथा सुरक्षा संबंधी चिंताओं के परस्पर संबंधों और विश्व व्यवस्था पर उनके सामूहिक प्रभाव का परीक्षण कीजिए।

7. वैश्विक उत्तर तथा वैश्विक दक्षिण—दोनों के दृष्टिकोण से इन चुनौतियों के समाधान हेतु सहयोगात्मक एवं सतत् उपागमों की आवश्यकता का विवेचन कीजिए।

3.2 भूमिका — समकालीन मुद्दों की समझ

इक्कीसवीं शताब्दी अभूतपूर्व वैश्विक परस्पर-निर्भरता तथा साथ ही राष्ट्रीय सीमाओं से परे बढ़ती हुई चुनौतियों से चिह्नित है। जलवायु परिवर्तन, व्यापक प्रवासन, असमानता, वैश्विक महामारी, साइबर असुरक्षा तथा अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद जैसे विषयों ने विश्व राजनीति के स्वरूप को पुनर्परिभाषित किया है और केवल राज्य-केंद्रित शासन व्यवस्था की सीमाओं को उजागर किया है। ये समकालीन वैश्विक समस्याएँ वैश्विक अर्थव्यवस्था, प्रौद्योगिकी तथा पर्यावरण में हुए गहरे संरचनात्मक परिवर्तनों से उत्पन्न हुई हैं, किंतु साथ ही न्याय, सुरक्षा तथा सतत् विकास से संबंधित मानकात्मक प्रश्नों को भी सामने लाती हैं। इनके समाधान के लिए सहयोगात्मक संस्थाओं तथा ऐसे नैतिक ढाँचों की आवश्यकता है, जो विकसित और विकासशील समाजों के बीच की दूरी को कम कर सकें।

इन चुनौतियों को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि वैश्वीकरण ने अवसरों तथा जोखिमों—दोनों को किस प्रकार तीव्र किया है। जिस तकनीकी और आर्थिक परस्पर-निर्भरता ने समृद्धि को बढ़ावा दिया है, उसी ने पर्यावरणीय क्षरण से लेकर उग्रवादी तंत्रों और वित्तीय संकटों तक अनेक अंतरराष्ट्रीय खतरों को भी बढ़ावा दिया है। किसी एक क्षेत्र की समस्याएँ प्रायः पूरे विश्व में क्रमिक प्रभाव उत्पन्न करती हैं; जैसे—औद्योगिक उत्तर से होने वाला कार्बन उत्सर्जन कृषि-प्रधान दक्षिण की जलवायु को प्रभावित करता है, किसी एक देश का संघर्ष महाद्वीपों में जन-विस्थापन का कारण बनता है, तथा किसी एक क्षेत्र में संसाधनों की कमी वैश्विक मूल्य-वृद्धि को जन्म देती है। परिणामस्वरूप, समकालीन वैश्विक समस्याओं के समाधान के लिए साझा उत्तरदायित्व तथा नैतिक जवाबदेही पर आधारित वैश्विक शासन व्यवस्था आवश्यक है।

तीन प्रमुख विषय वैश्विक युग की चुनौतियों का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करते हैं और यही इस इकाई का मुख्य विषय हैं—पर्यावरणीय सततता, वैश्विक न्याय तथा अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद।

पर्यावरणीय संकट, जो वैश्विक तापवृद्धि, जैव-विविधता के ह्रास तथा प्राकृतिक संसाधनों के क्षय के रूप में प्रकट होता है, मानव सभ्यता की भौतिक आधारशिला को चुनौती देता है और विकास की अवधारणा पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य करता है।वैश्विक न्याय की खोज, राष्ट्रों के बीच धन, अधिकारों तथा पर्यावरणीय दायित्वों के न्यायसंगत वितरण, समानता तथा उत्तरदायित्व से संबंधित सतत् विमर्श का प्रतिनिधित्व करती है। अंतरराष्ट्रीय

आतंकवाद का उभार वैश्विक परस्पर-संबद्धता के अंधकारमय पक्ष को उजागर करता है, जहाँ प्रौद्योगिकी और विचारधारा मिलकर वैश्विक स्तर पर शांति, सुरक्षा तथा मानवीय गरिमा के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न करती हैं।

संस्थाएँ, जैसे संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम, अंतरराष्ट्रीय अपराध न्यायालय तथा संयुक्त राष्ट्र आतंकवाद निरोधक कार्यालय, विभिन्न संधियों, नागरिक समाज के आंदोलनों और गैर-राज्यीय नेटवर्कों के साथ मिलकर इन समस्याओं के समाधान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फिर भी वैश्विक राजनीति आज भी परस्पर विरोधी हितों, असमान क्षमताओं तथा वैश्विक उत्तर और वैश्विक दक्षिण के बीच भिन्न-भिन्न प्राथमिकताओं से प्रभावित है। इसलिए स्थायी तथा न्यायपूर्ण समाधान बहुपक्षीय सहयोग को सुदृढ़ करने, संस्थाओं में सुधार लाने और ऐसी नैतिक चेतना का विकास करने पर निर्भर करते हैं, जो संकीर्ण राष्ट्रीय दृष्टिकोण से ऊपर उठ सके।

पर्यावरणीय क्षरण, न्याय एवं समानता तथा आतंकवाद जैसी परस्पर संबद्ध चुनौतियों का अध्ययन करके यह इकाई इस बात की समग्र समझ विकसित करती है कि समकालीन समस्याएँ किस प्रकार वैश्विक परिदृश्य को परिवर्तित कर रही हैं तथा मानवता की सामूहिक अस्तित्व-रक्षा और नैतिक प्रगति की क्षमता की परीक्षा ले रही हैं।

3.3 वैश्विक पर्यावरणीय समस्याएँ – संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम

पर्यावरण संबंधी चिंताएँ इक्कीसवीं शताब्दी की प्रमुख समस्याओं के रूप में उभरकर सामने आई हैं। ये विदेश नीति, वैश्विक शासन व्यवस्था तथा मानव जाति के भविष्य को गहराई से प्रभावित कर रही हैं। बढ़ते तापमान, जैव विविधता का ह्रास, वनों की कटाई तथा प्राकृतिक संसाधनों के क्षय सहित पर्यावरणीय परिवर्तन का अभूतपूर्व विस्तार यह स्पष्ट करता है कि पर्यावरणीय अवनति केवल वैज्ञानिक या तकनीकी समस्या नहीं, बल्कि एक मूलभूत नैतिक तथा राजनीतिक चुनौती भी है। इन संकटों का समाधान सामूहिक उत्तरदायित्व, न्यायसंगत विकास तथा प्रभावी वैश्विक सहयोग की अपेक्षा करता है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम इन प्रयासों का प्रमुख आधार है। यह वैश्विक पर्यावरणीय शासन के लिए संस्थागत ढाँचा उपलब्ध कराता है तथा अंतरराष्ट्रीय समझौतों और सतत विकास संबंधी उपायों को प्रोत्साहित करता है।

3.3.1 वैश्विक तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन

वैश्विक तापवृद्धि से अभिप्राय पृथ्वी के औसत सतही तापमान में दीर्घकालिक वृद्धि से है। इसका मुख्य कारण वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन तथा नाइट्रस ऑक्साइड जैसी हरितगृह गैसों का निरंतर बढ़ता संचय है। ये गैसें हरितगृह प्रभाव के माध्यम से वायुमंडल में ऊष्मा को रोककर रखती हैं। औद्योगीकरण, वनों की कटाई तथा जीवाश्म ईंधनों के अत्यधिक दहन से यह प्रभाव और अधिक तीव्र हो गया है। जलवायु परिवर्तन पर अंतरसरकारी पैनल के वैज्ञानिक निष्कर्षों के अनुसार बीसवीं शताब्दी के मध्य से वैश्विक तापवृद्धि का प्रमुख कारण मानवीय गतिविधियाँ रही हैं।

जलवायु परिवर्तन के परिणाम अत्यंत व्यापक और परस्पर जुड़े हुए हैं। हिमाच्छादित क्षेत्रों का पिघलना, समुद्र के जलस्तर में वृद्धि, बार-बार आने वाली चरम मौसमीय घटनाएँ, वर्षा के स्वरूप में परिवर्तन तथा खाद्य और जल आपूर्ति में व्यवधान इसके प्रमुख प्रभाव हैं। इन परिवर्तनों का सबसे अधिक दुष्प्रभाव निर्धन और संवेदनशील समुदायों पर पड़ता है, जिससे सामाजिक असमानता और बढ़ जाती है। छोटे द्वीपीय देशों के अस्तित्व पर जलमग्न होने का संकट मंडरा रहा है, जबकि सूखा-प्रभावित क्षेत्रों में सीमित संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा तीव्र होती जा रही है। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन पर्यावरणीय नीति और मानव सुरक्षा के बीच की सीमाओं को धुंधला कर देता है।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के समन्वय में संचालित वैश्विक प्रयासों, जैसे पेरिस समझौता (2015) तथा जलवायु परिवर्तन संबंधी संयुक्त राष्ट्र रूपरेखा अभिसमय, का उद्देश्य वैश्विक तापवृद्धि को औद्योगीकरण-पूर्व स्तर की तुलना

में दो डिग्री सेल्सियस से कम रखना तथा उसे डेढ़ डिग्री सेल्सियस तक सीमित करने के लिए निरंतर प्रयास करना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ऊर्जा, परिवहन, कृषि तथा अन्य प्रमुख क्षेत्रों में व्यापक और परिवर्तनकारी सुधार आवश्यक हैं।

…और उपभोग की प्रवृत्तियाँ। संयुक्त राष्ट्र के सतत् विकास लक्ष्य, विशेषकर जलवायु संबंधी लक्ष्य, इस विषय को निर्धनता के निवारण तथा समानता की व्यापक रूपरेखा से जोड़ते हैं। अतः जलवायु परिवर्तन केवल पर्यावरण संबंधी संकट ही नहीं है, बल्कि यह विश्वव्यापी एकता, पारस्परिक सहयोग तथा नैतिक उत्तरदायित्व की भी गंभीर परीक्षा है।

3.3.2 जैव-विविधता का ह्रास एवं पारिस्थितिकी तंत्र का क्षरण

जैव-विविधता से आशय पृथ्वी पर विद्यमान जीवन की विविधता से है, जिसमें आनुवंशिक विविधता, विभिन्न जीव-प्रजातियाँ तथा पारिस्थितिकी तंत्र सम्मिलित हैं। यही विविधता पृथ्वी की सहनशीलता तथा पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखती है। किन्तु मानव के निरन्तर विस्तार के कारण इस जैव-विविधता में तीव्र गिरावट आई है। वैश्विक जैव-विविधता परिदृश्य की रिपोर्टों के अनुसार वर्तमान समय में जीव-प्रजातियों के विलुप्त होने की गति प्राकृतिक स्तर की अपेक्षा अनेक गुना अधिक हो गई है। इसके प्रमुख कारणों में प्राकृतिक आवासों का विनाश, वन्यजीवों का अनियंत्रित दोहन, प्रदूषण, बाह्य आक्रामक प्रजातियों का प्रसार तथा जलवायु परिवर्तन प्रमुख हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र का क्षरण उन आवश्यक सेवाओं को कमजोर कर देता है जिन पर मानव समाज निर्भर करता है, जैसे—परागण, जल का प्राकृतिक शुद्धीकरण, भूमि की उर्वरता तथा जलवायु का संतुलन। अमेज़न क्षेत्र में वनों का विनाश, ग्रेट बैरियर रीफ़ में प्रवाल भित्तियों का श्वेतीकरण तथा अफ्रीका के साहेल क्षेत्र में मरुस्थलीकरण इस बात के उदाहरण हैं कि पारिस्थितिक क्षति आजीविका और खाद्य सुरक्षा के लिए कितना बड़ा संकट उत्पन्न करती है। अनेक आदिवासी समुदायों के लिए जैव-विविधता केवल प्राकृतिक संपदा नहीं, बल्कि उनकी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आधारशिला भी है। इसलिए इसका ह्रास केवल जैविक नहीं, बल्कि सभ्यतागत क्षति का भी संकेत है।

इस चुनौती से निपटने के लिए अनेक अंतरराष्ट्रीय समझौते किए गए हैं, जैसे—जैव-विविधता अभिसमय (1992), नागोया प्रोटोकॉल (2010) तथा वैश्विक जैव-विविधता रूपरेखा (2022), जिसे मॉन्ट्रियल में आयोजित पंद्रहवें पक्षकार सम्मेलन में स्वीकार किया गया। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम ने जैव-विविधता की स्थिति की निगरानी, पारिस्थितिकी तंत्र की पुनर्स्थापना तथा विभिन्न देशों को राष्ट्रीय जैव-विविधता रणनीतियाँ विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस प्रकार जैव-विविधता का संरक्षण पारिस्थितिक संतुलन और सामाजिक न्याय, दोनों को सुदृढ़ करता है तथा विकास की ऐसी अवधारणा को स्थापित करता है जो भावी पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संपदा के संरक्षण को सर्वोच्च महत्व देती है।

3.3.3 संसाधनों की कमी एवं सतत विकास

संसाधनों की कमी से आशय जल, उपजाऊ भूमि, वन तथा खनिज जैसे आवश्यक प्राकृतिक संसाधनों के क्षय अथवा उनके असमान वितरण से है। तीव्र औद्योगिकीकरण, जनसंख्या वृद्धि तथा असंतुलित उपभोग के कारण सीमित प्राकृतिक संसाधनों की माँग निरन्तर बढ़ती जा रही है। पर्यावरणीय क्षरण इस समस्या को और अधिक गंभीर बना देता है, क्योंकि इससे पारिस्थितिकी तंत्र की पुनर्जीवन क्षमता घट जाती है। उदाहरण के लिए, जल-संकट विश्व की बड़ी जनसंख्या को प्रभावित कर रहा है, जबकि अत्यधिक मत्स्य दोहन तथा भूमि का कटाव खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा बन चुके हैं।

संसाधनों की कमी आज सामाजिक एवं आर्थिक असमानता तथा भू-राजनीतिक तनाव का प्रमुख कारण बनती जा रही है। तेल, नदी-घाटियों के जल तथा कृषि योग्य भूमि को लेकर होने वाले संघर्ष अनेक बार जातीय एवं राजनीतिक विवादों से भी जुड़ जाते हैं। इसी कारण विद्वानों ने पर्यावरणीय सुरक्षा की अवधारणा पर विशेष बल दिया है। सतत विकास की संकल्पना, जिसे सन् 1987 की ब्रुंटलैंड रिपोर्ट 'हमारा साझा भविष्य' के माध्यम से व्यापक मान्यता मिली, इस सिद्धांत पर आधारित है कि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति इस प्रकार की जाए कि भावी पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता किसी भी प्रकार से प्रभावित न हो।

संसाधनों के कुशल उपयोग, नवीकरणीय ऊर्जा की ओर संक्रमण तथा चक्रीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सतत विकास हेतु वर्ष २०३० के वैश्विक कार्यसूची जैसे अंतरराष्ट्रीय प्रयास अपशिष्ट को न्यूनतम करने पर बल देते हैं। हरित प्रौद्योगिकी के संवर्धन, पर्यावरणीय प्रभाव के आकलन तथा संस्थागत सततता प्रतिवेदन को प्रोत्साहित करने में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की भूमिका सरकारों और उद्योगों दोनों को पर्यावरण के प्रति उत्तरदायी दिशा प्रदान करने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण बन गई है। अंततः संसाधनों का प्रबंधन न्याय और समता से अविभाज्य है। वैश्विक समृद्धि अब पर्यावरण के दोहन अथवा निर्बल समुदायों के बलिदान पर आधारित नहीं होनी चाहिए।

3.3.4 संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की भूमिका

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की स्थापना वर्ष **1972** में मानव पर्यावरण पर स्टॉकहोम सम्मेलन के उपरांत हुई। यह पर्यावरण संबंधी विषयों के लिए संयुक्त राष्ट्र का प्रमुख समन्वयकारी निकाय है। इसका मुख्यालय नैरोबी (केन्या) में स्थित है। यह संस्था नेतृत्व, वैज्ञानिक मूल्यांकन तथा नीतिगत मार्गदर्शन प्रदान करती है, जिससे राष्ट्र वर्तमान पीढ़ी की जीवन-गुणवत्ता में सुधार करते हुए भावी पीढ़ियों के हितों की भी रक्षा कर सकें।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के प्रमुख कार्यों में वैश्विक पर्यावरणीय प्रवृत्तियों का अनुश्रवण, अंतरराष्ट्रीय वार्ताओं को सुगम बनाना, राष्ट्रीय पर्यावरणीय शासन को सुदृढ़ करना तथा अनुसंधान और शिक्षा के माध्यम से सतत विकास को प्रोत्साहित करना सम्मिलित है। यह अनेक महत्त्वपूर्ण बहुपक्षीय पर्यावरणीय समझौतों का संचालन अथवा समन्वय करता है, जिनमें वियना अभिसमय (1985), मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल (1987), जैव विविधता अभिसमय (1992), बेसल अभिसमय, स्टॉकहोम अभिसमय तथा जलवायु परिवर्तन रूपरेखा अभिसमय की प्रक्रिया में योगदान प्रमुख हैं। यह संस्था वैश्विक पर्यावरण परिदृश्य जैसी प्रामाणिक रिपोर्टें भी प्रकाशित करती है, जो विश्वभर में नीतिगत निर्णयों का आधार बनती हैं।

हाल के वर्षों में इस संस्था ने जलवायु अनुकूलन क्षमता, हरित वित्त तथा प्रकृति-आधारित समाधानों को सतत विकास का अभिन्न अंग माना है। इसकी संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण सभा सदस्य देशों, नागरिक समाज तथा विशेषज्ञों को एक साझा मंच प्रदान करती है, जहाँ प्लास्टिक प्रदूषण, नवीकरणीय ऊर्जा तथा सतत उपभोग जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार-विमर्श किया जाता है। पर्यावरणीय क्षरण के कारण शांति, स्वास्थ्य और अर्थव्यवस्था पर बढ़ते संकटों के बीच वैज्ञानिक ज्ञान, राजनीतिक इच्छाशक्ति और जनसहभागिता के समन्वय में इस संस्था की भूमिका निरंतर अधिक महत्त्वपूर्ण होती जा रही है।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम उस विकास-दृष्टि का प्रतीक है, जो प्रकृति के अंधाधुंध दोहन के स्थान पर उसके संरक्षण और उत्तरदायी संवर्धन को मानव अस्तित्व का आधार मानती है। यह पर्यावरण संरक्षण को आर्थिक प्रगति और सामाजिक समावेशन से जोड़ते हुए इस सिद्धांत को सुदृढ़ करता है कि सतत विकास कोई विलासिता नहीं, बल्कि वैश्विक न्याय और सुरक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है।

3.4 वैश्विक न्याय

वैश्विक न्याय की अवधारणा समकालीन अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक चिंतन का एक केंद्रीय विषय है। इसका उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि निष्पक्षता, अधिकार और नैतिक उत्तरदायित्व केवल राष्ट्रीय सीमाओं तक सीमित न रहकर समस्त विश्व में किस प्रकार लागू होने चाहिए। वैश्वीकरण के कारण परस्पर निर्भरता बढ़ने के साथ-साथ धन, अवसर और शक्ति की असमानताएँ अधिक स्पष्ट तथा नैतिक दृष्टि से अधिक चिंताजनक हो गई हैं। यह अवधारणा इस धारणा को चुनौती देती है कि न्याय केवल राज्यों की सीमाओं के भीतर ही सीमित है, और इसके स्थान पर ऐसे ढाँचे की आवश्यकता पर बल देती है जो समस्त मानवता के बीच अधिकारों और उत्तरदायित्वों का न्यायसंगत वितरण सुनिश्चित करे।

"राजनीतिक दर्शन तथा विश्व राजनीति, नैतिक सिद्धान्त को शासन, वाणिज्य, विकास तथा पारिस्थितिकीय स्थिरता से सम्बन्धित व्यावहारिक प्रश्नों के साथ जोड़ती है।"

3.4.1 अर्थ एवं दार्शनिक आधार

अपने सबसे सरल अर्थ में, वैश्विक न्याय से तात्पर्य अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के अंतर्गत व्यक्तियों, समुदायों और राष्ट्रों के बीच संबंधों में निष्पक्षता तथा नैतिक समानता की स्थापना के प्रयास से है। इसका अभिप्राय है कि प्रत्येक मनुष्य के साथ, उसकी राष्ट्रीयता की परवाह किए बिना, समान नैतिक सम्मान का व्यवहार किया जाए तथा उसे विश्व के संसाधनों और अवसरों में न्यायोचित भाग प्राप्त हो। दार्शनिक दृष्टि से यह विचारधारा प्राचीन नैतिक परम्पराओं और आधुनिक राजनीतिक चिंतन, दोनों पर आधारित है।

ऐतिहासिक रूप से, इमैनुएल कांट जैसे विचारकों ने सार्वभौमिक विवेक और स्थायी शांति पर आधारित विश्वव्यापी व्यवस्था का समर्थन किया। उनके अनुसार राज्य नहीं, बल्कि व्यक्ति ही विधि के अंतिम विषय हैं। इसके पश्चात जॉन रॉल्स ने अपनी कृति **'The law of peoples' (1999)** में न्याय के सिद्धांतों का विस्तार अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र तक किया तथा न्यायपूर्ण शर्तों पर सहयोग करने वाले सभ्य समाजों की व्यवस्था का प्रतिपादन किया। उनके आलोचकों, विशेषतः थॉमस पोगे और चार्ल्स बाइट्ज़, ने अधिक व्यापक वैश्विक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए यह प्रतिपादित किया कि वैश्विक संस्थाएँ तथा व्यापारिक संरचनाएँ स्वयं असमानता को बनाए रखती हैं, इसलिए उन पर संसाधनों के न्यायसंगत पुनर्वितरण का नैतिक दायित्व है।

विस्तृत नैतिक दृष्टिकोण से वैश्विक न्याय पर होने वाली चर्चाएँ मुख्यतः तीन प्रमुख विचारधाराओं पर आधारित हैं—

1. **विश्वमानवतावाद**— यह मानता है कि नैतिक दायित्व सीमाओं से परे होते हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति समान सम्मान और संरक्षण का अधिकारी है।
2. **समुदायवाद**— यह सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय संदर्भों के महत्व पर बल देता है तथा मानता है कि नैतिक दायित्व अपने समुदाय के प्रति सर्वाधिक प्रबल होते हैं।
3. **समालोचनात्मक तथा उत्तर-औपनिवेशिक सिद्धांत**— ये इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि साम्राज्यवाद, जातीय भेदभाव और पूँजीवाद की ऐतिहासिक विरासतों ने ऐसी संरचनात्मक अन्यायपूर्ण व्यवस्था उत्पन्न की है, जिससे आज भी वैश्विक दक्षिण के राष्ट्र और समाज प्रतिकूल रूप से प्रभावित हैं।

व्यावहारिक स्तर पर वैश्विक न्याय का क्षेत्र निर्धनता उन्मूलन, ऋण-राहत, जलवायु न्याय, स्त्री-अधिकार, प्रवासन तथा शांति और सतत विकास के लिए उत्तरदायित्वों के वैश्विक वितरण जैसे विषयों से संबंधित है। यह केवल एक दार्शनिक आदर्श ही नहीं, बल्कि वैश्विक शासन-व्यवस्था में सुधार का एक मार्गदर्शक सिद्धांत भी है।

3.4.2 आर्थिक एवं सामाजिक आयाम

वैश्विक न्याय का आर्थिक आयाम औद्योगिक तथा विकासशील देशों के बीच विद्यमान गहरी आर्थिक विषमताओं के साथ-साथ समाजों के भीतर पाई जाने वाली असमानताओं का भी अध्ययन करता है। विश्व में अभूतपूर्व आर्थिक समृद्धि होने के बावजूद आज भी सत्तर करोड़ से अधिक लोग निर्धनता रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहे हैं तथा मानवता का एक विशाल वर्ग मूलभूत स्वास्थ्य-सेवाओं, शिक्षा और डिजिटल संपर्क जैसी आवश्यक सुविधाओं से वंचित है। वैश्विक उत्तर और वैश्विक दक्षिण के बीच विद्यमान अंतर, जिसकी जड़ें औपनिवेशिक शोषण में हैं तथा जो असमान व्यापारिक और वित्तीय व्यवस्थाओं के कारण आज भी बना हुआ है, वैश्विक न्याय के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है।

आर्थिक दृष्टि से वैश्विक न्याय संसाधनों, प्रौद्योगिकी तथा अवसरों के अधिक न्यायपूर्ण वितरण की माँग करता है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम जैसे विभिन्न अंतरराष्ट्रीय प्रयास इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्यरत हैं।

विश्व बैंक की निर्धनता-निवारण संबंधी नीतियाँ तथा सतत विकास लक्ष्य इस नैतिक दायित्व को व्यवहार में परिणत करने का प्रयास करते हैं। किन्तु पूँजी पर एकाधिकार, बौद्धिक संपदा से संबंधित प्रतिबंधात्मक व्यवस्थाएँ तथा वैश्विक बाज़ारों में असमान सहभागिता जैसी संरचनात्मक बाधाएँ प्रायः इन आदर्शों को कमजोर कर देती हैं। व्यापारिक न्याय और मुक्त व्यापार के मध्य चलने वाला विवाद इसी दुविधा को स्पष्ट करता है। यद्यपि वैश्विक बाज़ार आर्थिक विकास को गति दे सकते हैं, फिर भी वे प्रायः विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में निर्भरता को बढ़ाते हैं तथा स्थानीय उद्योगों को दबा देते हैं।

वैश्विक स्तर पर सामाजिक न्याय केवल भौतिक संसाधनों के वितरण तक सीमित नहीं है, बल्कि अधिकारों, मान-सम्मान तथा सहभागिता की समानता को भी अपने भीतर समाहित करता है। लैंगिक असमानता, अल्पसंख्यकों के अधिकार, शिक्षा तक पहुँच तथा शरणार्थियों की सुरक्षा जैसे विषय यह स्पष्ट करते हैं कि अन्याय अनेक स्तरों पर कार्य करता है। वैश्विक न्याय का नारीवादी दृष्टिकोण यह प्रतिपादित करता है कि परिवार, कार्यस्थल और राज्य के भीतर विद्यमान शक्ति-संबंधों का विश्लेषण वैश्विक शक्ति-संरचनाओं के साथ किया जाना चाहिए। इसी प्रकार पर्यावरणीय न्याय के आंदोलन सामाजिक और पारिस्थितिक पक्षों को एक-दूसरे से जोड़ते हुए यह रेखांकित करते हैं कि प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन का सबसे अधिक भार संसार के सबसे निर्धन समुदायों को उठाना पड़ता है, जबकि इन समस्याओं में उनका योगदान सबसे कम होता है।

अंततः वैश्विक न्याय के आर्थिक और सामाजिक आयामों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था को स्थायित्व, समावेशिता तथा मानव कल्याण के नैतिक सिद्धांतों पर पुनः आधारित किया जाए। इसके लिए प्रगति के सकल घरेलू उत्पाद-आधारित मानकों का पुनर्मूल्यांकन करते हुए समानता, सशक्तीकरण तथा पर्यावरणीय स्वास्थ्य जैसे मानकों को भी सम्मिलित करना आवश्यक है।

3.4.3 समानता तथा मानवाधिकारों पर संस्थाएँ, आंदोलन और विमर्श

वैश्विक न्याय की वास्तविक अभिव्यक्ति अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं, अंतरराष्ट्रीय जन-आंदोलनों तथा विधिक एवं मानकगत विमर्शों के माध्यम से होती है। इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्थागत आधार संयुक्त राष्ट्र का अधिकार-पत्र तथा सार्वभौम मानवाधिकार घोषणा-पत्र (1948) है, जिसमें समस्त मानवजाति की अंतर्निहित गरिमा और

समानता को मान्यता दी गई है। इसके पश्चात नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों से संबंधित विभिन्न संधियों तथा महिलाओं, बच्चों, प्रवासियों और दिव्यांग व्यक्तियों से संबंधित अभिसमयों ने वैश्विक स्तर पर मानवाधिकारों की रक्षा के उद्देश्य से एक विस्तृत विधिक व्यवस्था का निर्माण किया है।

अंतरराष्ट्रीय न्यायालय तथा अंतरराष्ट्रीय अपराध न्यायालय जैसी संस्थाएँ इस सिद्धांत का प्रतिनिधित्व करती हैं कि युद्ध अपराध, नरसंहार तथा मानवता के विरुद्ध अपराध जैसे कृत्य राज्य की प्रभुसत्ता से ऊपर हैं और सार्वभौमिक न्याय की रक्षा के लिए उनका अभियोजन किया जाना चाहिए। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद तथा मानवाधिकारों के लिए उच्चायुक्त का कार्यालय मानवाधिकार उल्लंघनों की निगरानी करते हैं, उत्तरदायित्व को प्रोत्साहित करते हैं तथा राष्ट्रीय संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए तकनीकी सहायता प्रदान करते हैं।

औपचारिक संस्थाओं से आगे बढ़कर नागरिक समाज के आंदोलन तथा वैश्विक जन-जालों ने वैश्विक न्याय को जन-केंद्रित स्वरूप प्रदान किया है। निर्धनता उन्मूलन, ऋण-मुक्ति, न्यायपूर्ण व्यापार तथा भावी पीढ़ियों की रक्षा जैसे अभियानों ने आर्थिक अन्याय, पर्यावरणीय विनाश और शासन की निष्क्रियता के विरुद्ध सामूहिक जन-चेतना को सशक्त किया है। इसी प्रकार मानवाधिकार संरक्षण से जुड़े अनेक स्वैच्छिक संगठन राज्यों और निगमों को उत्तरदायी बनाते हैं, जबकि वैश्विक दक्षिण के जमीनी आंदोलन भूमि-अधिकार, खाद्य स्वावलंबन तथा जलवायु-समानता की वकालत करते हुए यह सिद्ध करते हैं कि न्याय सहभागी होना चाहिए, संरक्षणवादी नहीं।

समकालीन बहसें उन विवादास्पद प्रश्नों के इर्द-गिर्द भी केन्द्रित हैं कि वैश्विक असमानता के समाधान का नैतिक उत्तरदायित्व किसका है—राज्यों का, निगमों का अथवा व्यक्तियों का? क्या समृद्ध राष्ट्रों को जलवायु परिवर्तन से सर्वाधिक प्रभावित लोगों को जलवायु क्षतिपूर्ति प्रदान करनी चाहिए? वैश्विक संस्थाएँ सांस्कृतिक विविधता के सम्मान और सार्वभौमिक मानवाधिकार मानकों के बीच किस प्रकार संतुलन स्थापित करें? ये प्रश्न स्पष्ट करते हैं कि वैश्विक न्याय कोई स्थिर सिद्धान्त नहीं, बल्कि समानता, विविधता और उत्तरदायित्व के मध्य संतुलन स्थापित करने वाला निरन्तर विकसित होता संवाद है।

इस प्रकार, वैश्विक न्याय की प्राप्ति नैतिक दृष्टि और राजनीतिक संघर्ष—दोनों का प्रतिनिधित्व करती है। यह मानवता को केवल दान की भावना से आगे बढ़कर पारस्परिक एकजुटता की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है; ऐसे वैश्विक तंत्रों में सुधार करने का आह्वान करती है जो अन्याय उत्पन्न करते हैं तथा राष्ट्रीय विशेषाधिकार के स्थान पर साझा मानवता पर आधारित शासन व्यवस्था की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करती है। नैतिक सिद्धान्तों को संस्थागत व्यवहार से जोड़ते हुए, वैश्विक न्याय आधुनिक विश्व की गहन असमानताओं और पारस्परिक निर्भरताओं के बीच मार्गदर्शन प्रदान करता है।

3.5 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद

अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद समकालीन विश्व के सबसे गंभीर और जटिल खतरों में से एक है। परम्परागत युद्ध से भिन्न, यह सीमाओं से परे संचालित होने वाला, असममित तथा विचारधारा-प्रेरित होता है। यह वैश्वीकरण की प्रमुख विशेषताओं—गतिशीलता, प्रौद्योगिकी और संचार—का उपयोग हिंसा तथा भय के माध्यम से राजनीतिक अथवा धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए करता है। आतंकवाद के वैश्विक प्रसार ने अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा की प्राथमिकताओं को बदल दिया है, जिसके परिणामस्वरूप नए कानून, सहयोगी गठबंधन तथा सुरक्षा और स्वतंत्रता के बीच संतुलन को लेकर नैतिक विमर्श विकसित हुए हैं। आतंकवाद को समझने के लिए उसके ऐतिहासिक विकास, विभिन्न स्वरूपों, वैश्विक प्रतिक्रियाओं तथा प्रौद्योगिकीय परिवर्तन से उत्पन्न नई चुनौतियों का अध्ययन आवश्यक है।

3.5.1 आतंकवाद का विकास एवं प्रकार

आतंकवाद शब्द की उत्पत्ति फ्रांसीसी क्रान्ति के उपरान्त हुए आतंक के शासनकाल (1793–1794) से हुई, जब राज्य ने स्वयं भय को राजनीतिक साधन के रूप में प्रयोग किया। कालान्तर में यह शब्द राजनीतिक परिवर्तन के उद्देश्य से हिंसा का सहारा लेने वाले गैर-राजकीय समूहों के लिए प्रयुक्त होने लगा। आधुनिक आतंकवाद का विकास विभिन्न चरणों में हुआ, जिनमें प्रत्येक अपने-अपने ऐतिहासिक परिवेश से प्रभावित था।

प्रथम चरण (उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक) अराजकतावादी आतंकवाद का था, जिसकी प्रमुख विशेषता राजाओं और साम्राज्यवादी शक्तियों को अस्थिर करने के उद्देश्य से की जाने वाली राजनीतिक हत्याएँ थीं।

द्वितीय चरण, जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद प्रारम्भ हुआ, उपनिवेशवाद-विरोधी मुक्ति आंदोलनों के साथ विकसित हुआ। इन आंदोलनों ने कूटनीतिक वार्ता से लेकर सशस्त्र प्रतिरोध तक अनेक उपाय अपनाए, जिससे कई बार विद्रोह और आतंकवाद के बीच का अंतर अस्पष्ट हो गया।

तृतीय चरण, जो सन् 1970 और 1980 के दशक में दिखाई दिया, विचारधारात्मक तथा राष्ट्रवादी संगठनों का था। यह शीतयुद्ध की ध्रुवीय राजनीति और जातीय संघर्षों का प्रतिबिंब था।

चतुर्थ एवं वर्तमान चरण, जो सन् 1990 के दशक से प्रारम्भ हुआ, मुख्यतः धार्मिक कट्टरता से प्रेरित है। इसकी विशेषता सीमाओं से परे सक्रिय आतंकवादी नेटवर्क हैं, जो विनाशकारी विचारधारा, वैश्विक संचार माध्यमों तथा अत्यधिक प्रचारित हिंसक घटनाओं का उपयोग ध्यान आकर्षित करने और नए सदस्यों की भर्ती के लिए करते हैं।

वर्तमान समय में आतंकवाद के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं—

राज्य-प्रायोजित आतंकवाद — इसमें सरकारें प्रतिद्वन्द्वी देशों या समूहों को अस्थिर करने के उद्देश्य से गुप्त रूप से हिंसक संगठनों को समर्थन प्रदान करती हैं।

- **धार्मिक आतंकवाद** — जो धर्म की निरपेक्ष एवं कट्टर व्याख्याओं से प्रेरित होता है तथा प्रायः धर्माधारित शासन की स्थापना का उद्देश्य रखता है।
- **जातीय-राष्ट्रीयतावादी आतंकवाद** — जो आत्मनिर्णय के दावों से प्रेरित होता है, जैसे श्रीलंका के तमिल उग्रवादी संगठन अथवा चेचन्या के पृथकतावादी समूह।
- **वैचारिक आतंकवाद** — जिसमें वामपंथी तथा दक्षिणपंथी दोनों प्रकार के उग्रवादी सम्मिलित होते हैं, जो राजनीतिक क्रान्ति अथवा नस्ली श्रेष्ठता का समर्थन करते हैं।
- **साइबर आतंकवाद** — आतंकवाद का उभरता हुआ स्वरूप, जो डिजिटल संचार-जाल का उपयोग करके आधारभूत संरचनाओं को बाधित करता है अथवा भ्रामक सूचनाओं के माध्यम से भय फैलाता है।

आतंकवाद के कारण बहुआयामी हैं। राजनीतिक उपेक्षा, विदेशी आधिपत्य, आर्थिक अन्याय, पहचान का संकट तथा वैचारिक कट्टरता—ये सभी इसके प्रमुख कारण हैं। आतंकवाद की निरन्तरता यह दर्शाती है कि स्थानीय असन्तोष और वैश्विक विचारधाराएँ परस्पर गहराई से जुड़ी हुई हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक युग में आतंकवाद एक ओर संरचनात्मक हिंसा का परिणाम है, तो दूसरी ओर शक्ति-प्राप्ति की एक रणनीति भी है।

3.5.2 वैश्विक प्रतिक्रियाएँ एवं सुरक्षा रूपरेखाएँ

आतंकवाद के प्रति अन्तरराष्ट्रीय समुदाय की प्रतिक्रिया समय के साथ अस्थायी राज्य-आधारित उपायों से विकसित होकर बहुपक्षीय संस्थाओं तथा विधिक व्यवस्थाओं के व्यापक तंत्र में परिवर्तित हो गई है। संयुक्त राष्ट्र सामूहिक प्रयासों के समन्वय हेतु प्रमुख रूपरेखा प्रदान करता है। इसके दो प्रमुख साधन हैं—संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का प्रस्ताव 1267 (1999), जिसके अंतर्गत अल-कायदा तथा तालिबान प्रतिबन्ध समिति की स्थापना की गई, तथा प्रस्ताव 1373 (2001), जिसे 11 सितम्बर 2001 के आतंकवादी आक्रमणों के पश्चात् स्वीकार किया गया। इस प्रस्ताव के अंतर्गत सभी सदस्य देशों को आतंकवाद के वित्तपोषण को दण्डनीय अपराध घोषित करने, सीमा-सुरक्षा सुदृढ़ करने तथा गुप्तचर सहयोग बढ़ाने का दायित्व सौंपा गया। वर्ष 2006 में संयुक्त राष्ट्र ने वैश्विक आतंकवाद-निरोधी रणनीति को स्वीकार किया, जिसने पहली बार सुरक्षा, मानवाधिकार तथा विकास को एक समग्र दृष्टिकोण में जोड़ा। वर्ष 2017 में स्थापित संयुक्त राष्ट्र आतंकवाद-निरोध कार्यालय सदस्य देशों की क्षमता-वृद्धि, नीतिगत समन्वय तथा सहयोग का दायित्व निभा रहा है। इसके अतिरिक्त अंतरराष्ट्रीय आपराधिक पुलिस संगठन, वित्तीय कार्यवाही कार्यबल तथा यूरोपीय संघ एवं दक्षिण-पूर्वी एशियाई राष्ट्रों के क्षेत्रीय संगठन जैसे संस्थान पुलिस व्यवस्था, वित्तीय विनियमन तथा गुप्तचर सूचनाओं के आदान-प्रदान के माध्यम से सहयोग प्रदान करते हैं। ये सभी व्यवस्थाएँ राज्य की संप्रभुता का सम्मान करते हुए एक सार्वभौमिक सुरक्षा व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास करती हैं।

किन्तु वर्ष 2001 के पश्चात् संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा आरम्भ किए गए आतंकवाद के विरुद्ध वैश्विक अभियान ने आतंकवाद-निरोध की अनेक जटिलताओं को उजागर किया। अफ़ग़ानिस्तान, इराक तथा अन्य क्षेत्रों में किए गए सैन्य हस्तक्षेपों का उद्देश्य आतंकवादी तंत्रों को समाप्त करना था, परन्तु इनके परिणामस्वरूप मानवीय संकट, राज्य संस्थाओं का दुर्बल होना तथा वैचारिक कट्टरता जैसी अनेक अनपेक्षित समस्याएँ उत्पन्न हुईं। आलोचकों का मत है कि केवल सैन्य उपायों के आधार पर आतंकवाद के मूल कारणों—गरीबी, अन्याय तथा सामाजिक अलगाव—का स्थायी समाधान सम्भव नहीं है।

अतः प्रभावी वैश्विक रणनीति के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण आवश्यक है, जिसमें दमनात्मक उपायों (सुरक्षा, विधि-प्रवर्तन एवं प्रतिबन्ध) के साथ-साथ निवारक कूटनीति तथा विकासोन्मुख उपायों (शिक्षा, सामाजिक समावेशन एवं सुशासन) को भी समान महत्व दिया जाए। हिंसक उग्रवाद की रोकथाम पर संयुक्त राष्ट्र का विशेष बल इस बात का संकेत है कि आतंकवाद-निरोध की नीति प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोण से आगे बढ़कर सक्रिय एवं पूर्वनिवारक दृष्टिकोण की ओर अग्रसर हो रही है।

"ऐसी रूपरेखाओं को स्वीकार करते हुए कि आतंकवाद का उन्मूलन केवल बल के प्रयोग से नहीं किया जा सकता, बल्कि उन सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का समाधान करके किया जा सकता है जो उसके पनपने में सहायक होती हैं।"

3.5.3 आतंकवाद, प्रौद्योगिकी और मानवाधिकार संबंधी चुनौतियाँ

प्रौद्योगिकी की तीव्र प्रगति ने आतंकवाद की कार्यप्रणाली तथा उसके प्रतिरोध की रणनीतियों—दोनों में मूलभूत परिवर्तन कर दिए हैं। आतंकवादी संगठन अब सदस्यों की भर्ती, प्रचार-प्रसार, योजनाओं के निर्माण तथा धन के प्रबंधन के लिए डिजिटल माध्यमों का उपयोग करते हैं। युवाओं में विशेष रूप से इंटरनेट के माध्यम से होने वाला उग्र वैचारिक कट्टरपंथीकरण एक गंभीर सुरक्षा चुनौती बन गया है, क्योंकि उग्रवादी विचार सांकेतिक संचार तंत्रों तथा सामाजिक माध्यमों के माध्यम से विश्वभर में तीव्रता से फैल रहे हैं। साइबर आतंकवाद ने इस खतरे का विस्तार

भौतिक क्षेत्र से आभासी क्षेत्र तक कर दिया है, जिससे ऊर्जा व्यवस्था, परिवहन तंत्र तथा वित्तीय संस्थान भी उसके लक्ष्य बन गए हैं।

इसके साथ ही सरकारों ने इन खतरों का सामना करने के लिए निगरानी, आँकड़ों के संग्रहण तथा गुप्तचर प्रौद्योगिकियों का व्यापक विस्तार किया है। यद्यपि ऐसे उपाय सुरक्षा को सुदृढ़ कर सकते हैं, फिर भी वे निजता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा विधिसम्मत न्यायिक प्रक्रिया जैसे मानवाधिकारों से जुड़े गंभीर प्रश्न उत्पन्न करते हैं। व्यापक डिजिटल निगरानी तथा संदिग्ध व्यक्तियों की अनिश्चितकालीन निरुद्धता जैसे उपायों ने इस विषय पर व्यापक विमर्श को जन्म दिया है कि क्या सुरक्षा के नाम पर नागरिक स्वतंत्रताओं का ह्रास उचित है। राष्ट्रीय सुरक्षा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मध्य यह तनाव हमारे समय की प्रमुख नैतिक दुविधाओं में से एक है।

इसके अतिरिक्त, आतंकवाद-रोधी उपायों ने वैश्विक व्यवस्था में विद्यमान संरचनात्मक असमानताओं को भी उजागर किया है। कुछ समुदायों अथवा क्षेत्रों को 'आतंकवादी खतरा' घोषित करना अनेक बार जातीय, धार्मिक तथा भू-राजनीतिक पूर्वाग्रहों से प्रभावित होता है, जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण समुदायों का सामाजिक उपेक्षण होने लगता है। मानवीय विधि के विशेषज्ञों का मत है कि आतंकवाद-रोधी कार्यवाहियाँ अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप होनी चाहिए तथा हिंसा का सामना करते हुए भी नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित की जानी चाहिए। धार्मिक स्थलों की सुरक्षा तथा मानवाधिकारों के संरक्षण से संबंधित अंतरराष्ट्रीय पहलों ने अधिकार-आधारित दृष्टिकोण की आवश्यकता को पुनः स्थापित किया है।

डिजिटल युग में आतंकवाद का प्रभावी प्रतिरोध करने के लिए सुरक्षा संबंधी नवाचार और नैतिक संयम के मध्य संतुलन स्थापित करना आवश्यक है। प्रौद्योगिकी का उद्देश्य खतरों की पहचान करना, दुष्प्रचार का प्रतिकार करना तथा समाज को सुदृढ़ बनाना होना चाहिए, न कि उन लोकतांत्रिक मूल्यों को कमजोर करना जिनकी रक्षा करना उसका लक्ष्य है। बहुपक्षीय सहयोग, पारदर्शिता तथा मानवाधिकारों के प्रति दृढ़ प्रतिबद्धता यह सुनिश्चित करने के लिए अनिवार्य हैं कि आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष स्वयं किसी नए प्रकार के निरंकुश शासन का रूप न ले ले।

समग्र रूप से अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद का अध्ययन वैश्वीकरण के एक गहरे विरोधाभास को स्पष्ट करता है। जिस वैश्विक परस्पर संबद्धता से सहयोग और विकास को बल मिलता है, वही अनेक बार हिंसा के प्रसार को भी प्रोत्साहित करती है। अतः न्याय, शिक्षा, मानवीय सुरक्षा, उत्तरदायी प्रौद्योगिकी तथा विधि के समन्वित उपयोग द्वारा ही विश्व समुदाय आतंकवाद द्वारा उत्पन्न भय और प्रतिशोध के दुष्चक्र को समाप्त करने की दिशा में प्रभावी रूप से आगे बढ़ सकता है।

3.6 वैश्विक मुद्दों का अंतर्संबंध

समकालीन विश्व की समस्याएँ अलग-अलग नहीं हैं; वे वैश्वीकरण के जटिल ताने-बाने में गहराई से एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। पर्यावरण का क्षरण, आर्थिक विषमता तथा सुरक्षा संबंधी संकट परस्पर एक-दूसरे को सुदृढ़ करते हुए ऐसे चक्र उत्पन्न करते हैं, जो राष्ट्रीय सीमाओं से परे जाकर किसी एक राष्ट्र अथवा संस्था की क्षमता को चुनौती देते हैं। इन परस्पर संबंधों को समझना ऐसी समग्र नीतियों के निर्माण के लिए अत्यंत आवश्यक है, जो सतत, न्यायपूर्ण तथा शांतिपूर्ण वैश्विक व्यवस्था को प्रोत्साहित करें।

(क) पर्यावरण–अर्थव्यवस्था का पारस्परिक संबंध

जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों का क्षय तथा जैव विविधता का ह्रास जैसी पर्यावरणीय समस्याओं का आर्थिक स्थिरता और सामाजिक कल्याण पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न आपदाएँ आधारभूत संरचनाओं को नष्ट करती हैं, कृषि उत्पादन को बाधित करती हैं तथा लाखों लोगों को विस्थापित

कर देती हैं, जिससे निर्धनता और असमानता बढ़ती है। दूसरी ओर, जीवाश्म ईंधनों पर आधारित आर्थिक व्यवस्था तथा आवश्यकता से अधिक उपभोग पर्यावरण के क्षरण को और तीव्र कर देते हैं। यह चक्रीय संबंध उस स्थिति को जन्म देता है, जिसे विद्वान जलवायु–विकास विरोधाभास कहते हैं—अर्थात् आर्थिक विकास और निर्धनता उन्मूलन के लक्ष्य को इस प्रकार प्राप्त करना कि पृथ्वी की पारिस्थितिक व्यवस्था को कोई क्षति न पहुँचे।

सतत विकास का उद्देश्य हरित प्रौद्योगिकी, नवीकरणीय ऊर्जा तथा समावेशी आर्थिक नीतियों के माध्यम से इन सभी पक्षों का समन्वय करना है। किन्तु तकनीकी क्षमता तथा वित्तीय संसाधनों में असमानता विकसित और विकासशील क्षेत्रों के बीच की दूरी को बनाए रखती है, जिससे पर्यावरण संबंधी प्रश्न व्यापक वैश्विक न्याय के विषय बन जाते हैं।

(ख) न्याय और सुरक्षा का संबंध

वैश्विक न्याय और सुरक्षा के प्रश्न भी परस्पर गहराई से जुड़े हुए हैं। आर्थिक वंचना, राजनीतिक उपेक्षा तथा मानवाधिकारों का उल्लंघन उग्रता और संघर्ष के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकते हैं। जब समाज संरचनात्मक अन्याय—जैसे शिक्षा का अभाव, बेरोज़गारी अथवा संस्थागत भेदभाव—का सामना करता है, तब लोगों की असंतुष्टि हिंसा का रूप ले सकती है, जो कभी-कभी आतंकवाद अथवा विद्रोह के रूप में प्रकट होती है। इसलिए न्याय की स्थापना केवल नैतिक आदर्श नहीं, बल्कि वैश्विक शांति और सुरक्षा के लिए व्यावहारिक आवश्यकता भी है।

साथ ही, सुरक्षा सुनिश्चित करने का तरीका भी न्याय को प्रभावित करता है। यदि आतंकवाद-निरोधी उपाय मानवाधिकारों का सम्मान किए बिना लागू किए जाएँ, तो वे उन्हीं अन्यायपूर्ण परिस्थितियों को पुनः उत्पन्न कर सकते हैं, जिन्हें समाप्त करने का उनका उद्देश्य होता है। इसलिए स्थायी शांति मानव-केंद्रित सुरक्षा दृष्टिकोण पर निर्भर करती है, जिसमें बल-प्रयोग की अपेक्षा मानव गरिमा, समानता तथा विधि के शासन को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है।

(ग) प्रौद्योगिकी और वैश्वीकरण का प्रभाव

प्रौद्योगिकी की प्रगति तथा वैश्विक संपर्क आज की विश्व समस्याओं के प्रेरक भी हैं और उनके समाधान के साधन भी। डिजिटल प्रौद्योगिकियाँ ज्ञान के आदान-प्रदान को तीव्र बनाती हैं, जलवायु और मानवाधिकारों के समर्थन में वैश्विक आंदोलनों को सशक्त करती हैं तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देती हैं। किन्तु यही साधन भ्रामक सूचनाओं, संगणकीय अपराधों तथा उग्र विचारों के प्रसार को भी बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार प्रौद्योगिकी दो धार वाली तलवार के समान है, जो मानवता की सृजन और विनाश—दोनों प्रकार की क्षमताओं को बढ़ा देती है।

इसके अतिरिक्त, प्रौद्योगिकी तक असमान पहुँच डिजिटल विभाजन को स्थायी बना देती है, जो आर्थिक विषमताओं को प्रतिबिंबित करता है तथा वैश्विक प्रगति में समान भागीदारी को सीमित कर देता है।

घ) शासन और बहुपक्षीय सहयोग

वैश्विक चुनौतियों की परस्पर संबद्धता ऐसे वैश्विक शासन की अपेक्षा करती है, जो समग्र, समावेशी तथा नैतिक आधार पर स्थापित हो। पर्यावरण संरक्षण को व्यापार नीति, प्रवासन प्रबंधन अथवा मानवाधिकारों की सुरक्षा से अलग नहीं किया जा सकता। संयुक्त राष्ट्र, विश्व बैंक, विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा विश्व व्यापार संगठन जैसी संस्थाओं को अलग-अलग कार्य करने के स्थान पर अपने दायित्वों का समन्वित निर्वहन करना चाहिए। सतत

विकास हेतु वर्ष 2030 की कार्ययोजना जैसे समेकित ढाँचे समृद्धि, समानता तथा पर्यावरणीय उत्तरदायित्व को एक सूत्र में जोड़ने वाली व्यापक दृष्टि प्रस्तुत करते हैं।

किन्तु अंतरराष्ट्रीय नीतियों में समन्वय स्थापित करने में शक्ति के असमान वितरण तथा परस्पर विरोधी राष्ट्रीय हित बाधा उत्पन्न करते हैं। औद्योगिक तथा विकासशील देशों, उत्तर तथा दक्षिण, अथवा लोकतांत्रिक तथा अधिनायकवादी व्यवस्थाओं की भिन्न-भिन्न प्राथमिकताएँ सर्वसम्मति स्थापित करना कठिन बना देती हैं। इसलिए बहुपक्षीय सहयोग को केवल औपचारिक समझौतों तक सीमित न रहकर ऐसे वास्तविक सहभागिता संबंधों का रूप लेना चाहिए, जो नागरिक समाज तथा स्थानीय समुदायों सहित सभी हितधारकों को सशक्त बनाएँ।

ङ) नैतिक एवं मानवीय आयाम

मूल रूप से वैश्विक समस्याओं की परस्पर संबद्धता समस्त मानवता की नैतिक परस्पर निर्भरता का प्रतिबिंब है। जलवायु परिवर्तन, अन्याय तथा आतंकवाद केवल राजनीतिक अथवा तकनीकी समस्याएँ नहीं हैं, बल्कि वे मानवीय मूल्यों के संकट का संकेत हैं। इक्कीसवीं शताब्दी ऐसी वैश्विक नैतिकता की अपेक्षा करती है, जिसका आधार एकता, सहानुभूति तथा समस्त जीवन के प्रति सम्मान हो। सतत विकासोन्मुख शिक्षा, विभिन्न संस्कृतियों के मध्य संवाद तथा नैतिक नेतृत्व सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने के लिए अत्यंत आवश्यक साधन हैं।

इस प्रकार, वैश्विक समस्याओं की परस्पर निर्भरता यह सिद्ध करती है कि किसी एक क्षेत्र में हुई प्रगति तब तक स्थायी नहीं हो सकती, जब तक अन्य क्षेत्रों में भी समान रूप से प्रगति न हो। पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए आर्थिक न्याय आवश्यक है; वैश्विक शांति के लिए मानव विकास अनिवार्य है; तथा प्रौद्योगिकीय नवाचार को नैतिक उत्तरदायित्व के अनुरूप होना चाहिए। पृथक-पृथक क्षेत्रों में सीमित नीति-निर्माण का युग समाप्त हो चुका है; आज की परस्पर जुड़ी हुई वैश्विक चुनौतियाँ साझा भविष्य के लिए समेकित दृष्टिकोण की माँग करती हैं।

अंततः, वैश्विक चुनौतियाँ संपूर्ण मानवता की साझा चुनौतियाँ हैं। उनकी परस्पर संबद्धता को समझना ऐसे विश्व के निर्माण की दिशा में पहला कदम है, जो केवल सुरक्षित और समृद्ध ही नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए न्यायपूर्ण तथा सतत भी हो।

3.7 सारांश

इस इकाई में इक्कीसवीं शताब्दी की वैश्विक राजनीतिक, आर्थिक तथा नैतिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाले प्रमुख समकालीन विश्व विषयों का अध्ययन किया गया। इसमें यह स्पष्ट किया गया कि वैश्विक पर्यावरणीय संकट, न्याय एवं असमानता तथा अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद जैसी समस्याएँ राष्ट्रीय सीमाओं से परे हैं और उनके समाधान के लिए वैश्विक शासन के माध्यम से सामूहिक प्रयास आवश्यक हैं।

अनुभाग 3.3 में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के परिप्रेक्ष्य में वैश्विक पर्यावरणीय समस्याओं का विवेचन किया गया। विद्यार्थियों ने यह समझा कि वैश्विक तापवृद्धि, जैव विविधता का ह्रास तथा प्राकृतिक संसाधनों की कमी वैश्विक नीतियों को प्रभावित करने वाले अत्यंत महत्त्वपूर्ण कारक बन चुके हैं।

जलवायु संबंधी वार्ताओं में नेतृत्व, प्रदूषण नियंत्रण तथा सतत् विकास के समर्थन में की गई पहल यह सिद्ध करती है कि पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक उन्नति परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं।

अनुभाग 3.4 में वैश्विक न्याय की अवधारणा का विवेचन किया गया है। इसमें उसके दार्शनिक आधार तथा आर्थिक और सामाजिक आयामों का विश्लेषण किया गया है। इस अनुभाग में वैश्विक उत्तर और वैश्विक दक्षिण के मध्य विद्यमान निरंतर असमानताओं को रेखांकित करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि न्याय अब केवल किसी एक राष्ट्र

का आंतरिक विषय नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व का नैतिक दायित्व है। अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ, मानवाधिकार आंदोलन तथा नागरिक समाज की सक्रियता यह दर्शाती है कि राष्ट्रों और समाजों के बीच न्याय, मानवीय गरिमा और समानता की स्थापना के लिए सतत प्रयास आवश्यक हैं।

अनुभाग 3.5 में अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद का अध्ययन किया गया है। इसमें उसके ऐतिहासिक विकास, विभिन्न स्वरूपों तथा वैश्विक स्तर पर किए गए उपायों का वर्णन है। यह स्पष्ट किया गया है कि आतंकवाद की सीमाओं से परे फैली प्रकृति राष्ट्रों की सुरक्षा के लिए गंभीर चुनौती है तथा विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति ने आतंकवादी गतिविधियों और उनके प्रतिरोध के उपायों—दोनों को प्रभावित किया है। विद्यार्थियों को यह समझाया गया है कि सुरक्षा सुनिश्चित करने और मानवाधिकारों की रक्षा के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है, क्योंकि स्थायी सुरक्षा केवल सैन्य शक्ति से नहीं, बल्कि न्याय और समावेशन से प्राप्त होती है।

अंततः अनुभाग 3.6 में सभी वैश्विक समस्याओं की परस्पर संबद्धता पर बल दिया गया है। पर्यावरण का ह्रास, सामाजिक अन्याय तथा सुरक्षा संबंधी संकट एक-दूसरे को प्रभावित और सुदृढ़ करते हैं। इसलिए समग्र शासन व्यवस्था तथा साझा नैतिक उत्तरदायित्व आवश्यक हैं। इस इकाई का निष्कर्ष है कि स्थायी शांति और समृद्धि तभी संभव है, जब मानवता पर्यावरणीय संतुलन, आर्थिक न्याय तथा नैतिक सहयोग को वैश्विक एकता की भावना के साथ समन्वित कर सके।

3.8 शब्दावली

- **भूमंडलीकरण :** व्यापार, संचार और प्रौद्योगिकी के माध्यम से राष्ट्रीय सीमाओं के पार अर्थव्यवस्थाओं, संस्कृतियों और आबादी के बीच बढ़ता अंतर्संबंध और परस्पर निर्भरता।

- **संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम :** संयुक्त राष्ट्र की यह एजेंसी 1972 में अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण नीतियों और सतत विकास पहलों के समन्वय और प्रचार के लिए स्थापित की

- **जलवायु परिवर्तन :** पृथ्वी पर तापमान और मौसम के पैटर्न में दीर्घकालिक परिवर्तन, मुख्य रूप से मानवीय गतिविधियों से उत्पन्न ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के कारण होता है।

- **जैव विविधता :** विभिन्न प्रकार के जीवित जीव-पौधे, जानवर और सूक्ष्मजीव तथा उनके द्वारा निर्मित पारिस्थितिकी तंत्र।

- **सतत विकास :** ऐसा विकास जो वर्तमान पीढ़ी की जरूरतों को पूरा करे, साथ ही भविष्य की पीढ़ियों की अपनी जरूरतों को पूरा करने की क्षमता से समझौता न करे।

- **वैश्विक न्याय :** यह सिद्धांत कि निष्पक्षता, अधिकार और जिम्मेदारियां राष्ट्रीय सीमाओं की परवाह किए बिना सभी मनुष्यों तक विस्तारित होनी चाहिए।

- **अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद :** राजनीतिक रूप से प्रेरित हिंसा के ऐसे कृत्य जो राष्ट्रीय सीमाओं को पार करते हैं और किसी सरकार या आबादी को डराने या प्रभावित करने के उद्देश्य से किए जाते हैं।

- **साइबर आतंकवाद :** राजनीतिक या वैचारिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए व्यवधान, भय या क्षति उत्पन्न करने हेतु कंप्यूटर नेटवर्क या डिजिटल प्रौद्योगिकी का उपयोग करना।

- **वैश्विक शासन :** अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों, मानदंडों और राज्य एवं गैर-राज्य के सहयोगात्मक कार्यों के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय समस्याओं का सामूहिक प्रबंधन।

- **सतत विकास लक्ष्य (एसडीजी) :** संयुक्त राष्ट्र द्वारा 2015 में गरीबी उन्मूलन, ग्रह की रक्षा और 2030 तक सभी के लिए समृद्धि सुनिश्चित करने के लिए अपनाए गए 17 लक्ष्यों का एक समूह।

- **वैश्विक उत्तर और दक्षिण :** विश्व के विकसित और विकासशील क्षेत्रों के बीच सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक विभाजन का वर्णन करने वाले शब्द।

3.9 अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वैश्वीकरण की परिभाषा दीजिए तथा अवसरों और चुनौतियों के सृजन में इसकी द्वैध भूमिका का वर्णन कीजिए।
2. संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम द्वारा संबोधित की जाने वाली तीन प्रमुख पर्यावरणीय चुनौतियों का उल्लेख कीजिए।
3. उग्रवाद और आतंकवाद में क्या अंतर है?
4. वर्ष 1987 की ब्रंटलैंड रिपोर्ट के संदर्भ में सतत विकास की व्याख्या कीजिए।
5. वैश्विक न्याय से क्या अभिप्राय है? एक दार्शनिक तथा एक व्यावहारिक उदाहरण दीजिए।
6. ऐसे दो उपाय बताइए जिनसे प्रौद्योगिकी एक ओर आतंकवाद का मुकाबला करती है और दूसरी ओर उसे बढ़ावा भी देती है।
7. पेरिस समझौते का मुख्य उद्देश्य बताइए।

(ख) निबंधात्मक / दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की जलवायु परिवर्तन तथा संसाधनों की कमी जैसी समस्याओं के समाधान में भूमिका का समालोचनात्मक विश्लेषण कीजिए। इसकी उपलब्धियों तथा सीमाओं पर टिप्पणी कीजिए।
2. वैश्विक न्याय की अवधारणा का विवेचन कीजिए। विश्वनागरिकतावाद तथा समुदायवाद जैसे दार्शनिक सिद्धान्त नैतिक उत्तरदायित्व की व्याख्या में किस प्रकार भिन्न हैं?
3. अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद का विश्व व्यवस्था पर प्रभाव का परीक्षण कीजिए। वैश्विक स्तर पर अपनाई गई आतंकवाद-रोधी प्रतिक्रियाएँ मानवाधिकारों के सिद्धान्तों के साथ किस प्रकार संतुलित रही हैं अथवा किन रूपों में उनसे टकराई हैं?
4. समकालीन विश्व में पर्यावरणीय, आर्थिक तथा सुरक्षा संबंधी चुनौतियों की परस्पर संबद्धता का मूल्यांकन कीजिए। समन्वित वैश्विक शासन किस प्रकार सतत शांति तथा विकास को प्रोत्साहित कर सकता है?
5. "न्याय, सततता और सुरक्षा एक ही त्रिभुज के तीन पक्ष हैं।" इक्कीसवीं शताब्दी के वैश्वीकरण के संदर्भ में इस कथन की विवेचना कीजिए।

3.10 संदर्भ ग्रंथ

1. David Held and Anthony McGrew, et.al (1999) Global Transformation: Politics, Economy and Culture, Stanford, Stanford University Press.
2. Joseph E. Stiglitz (2018), Globalization and Its Discontents Revisited: AntiGlobalization in the Era of Trump, New York: W.W. Norton & Company.
3. Jagdish Bhagwati (2007), In Defense of Globalization, Oxford, Oxford University Press.
4. John Clark (ed.) (2003), Globalizing Civic Engagement: Civil Society and Transnational Action, London, Earthscan.
5. Arjun Appadurai (1996) Modernity at Large: Cultural Dimensions of Globalisation, University of Minnesota Press
6. Deepak Nayyar (ed.) (2002) Governing Globalization: Issues and Institutions, Oxford University Press.
7. David Held and Anthony McGrew (ed.), (2003), The Global Transformation Reader: An introduction to the Globalization Debate, 2nd Cambridge, Polity Press, Blackwell Publishing.
8. Viotti, P. R. and Kauppi, M. V. (2007) International Relations and World Politics-Security, Economy, Identity. Third Edition. Delhi: Pearson Education, pp. 430-450.
9. Taylor, P. and Grom, A.J.R. (eds.) (2000) The United Nations at the Millennium. London: Continuum. pp. 1-20.
10. Tripathi, S. (2015). GLOBALIZATION AND NATIONAL SECURITY. The Indian Journal of Political Science, 76(4), 741–746. https://www.jstor.org/stable/26575592

क्षेत्रीय संगठन

संरचना

4.1 अधिगम उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना – समकालीन विश्व में क्षेत्रवाद

4.3 दक्षिण–पूर्व एशियाई राष्ट्रों का संगठन

4.3.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं उद्देश्य

4.3.2 संस्थागत संरचना एवं निर्णय–निर्माण

4.3.3 आर्थिक एकीकरण एवं राजनीतिक सहयोग

4.3.4 क्षेत्रीय तथा वैश्विक मामलों में संगठन की भूमिका

4.4 यूरोपीय संघ

4.4.1 विकास एवं संधि–ढाँचा

4.4.2 संस्थाएँ एवं निर्णय–निर्माण की व्यवस्थाएँ

4.4.3 आर्थिक एवं राजनीतिक एकीकरण

4.4.4 वैश्विक भूमिका एवं चुनौतियाँ

4.5 ब्रिक्स (उभरती अर्थव्यवस्थाओं का समूह)

4.5.1 स्थापना एवं उद्देश्य

4.5.2 संस्थागत व्यवस्थाएँ – नवीन विकास बैंक तथा आकस्मिक आरक्षित व्यवस्था

4.5.3 रणनीतिक उद्देश्य एवं वैश्विक प्रभाव

4.6 G21(वैश्विक आर्थिक मंच)

4.6.1 गठन एवं उद्देश्य

4.6.2 संरचना एवं कार्य–प्रणाली

4.6.3 वैश्विक आर्थिक शासन एवं क्षेत्रीय समन्वय में भूमिका

4.7 तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य – क्षेत्रीय संगठन एवं वैश्विक शासन

4.8 सारांश

4.9 पारिभाषिक शब्दावली

4.10 अभ्यास प्रश्न

4.11 सन्दर्भ ग्रंथ

4.1 अधिगम उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् शिक्षार्थी निम्नलिखित को समझने और करने में सक्षम होंगे–

1. क्षेत्रवाद की अवधारणा का विवेचन कीजिए तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् इसके उद्भव का मूल्यांकन कीजिए।
2. प्रमुख क्षेत्रीय संगठनों— दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्र संघ, यूरोपीय संघ, ब्रिक्स तथा G21समूह— की संरचना, उद्देश्यों तथा कार्यप्रणाली का विश्लेषण कीजिए।
3. इन संगठनों के क्षेत्रीय एवं वैश्विक शासन, आर्थिक एकीकरण तथा शान्ति-स्थापना में योगदान का परीक्षण कीजिए।
4. संस्थागत संरचना तथा नीतिगत अभिमुखता के आधार पर इन समूहों के मध्य समानताओं एवं भिन्नताओं की पहचान कीजिए।
5. बहुध्रुवीय विश्व में क्षेत्रीय सहयोग की समकालीन महत्ता का मूल्यांकन कीजिए।
6. राष्ट्रवाद, असमानता तथा भूराजनैतिक प्रतिद्वन्द्विताओं जैसी चुनौतियों का समालोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए, जो क्षेत्रीय एकता और सहयोग की भावना की परीक्षा लेती हैं।

4.2 भूमिका — समकालीन विश्व में क्षेत्रवाद

अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में क्षेत्रवाद से आशय भौगोलिक अथवा सामरिक रूप से परस्पर सम्बद्ध देशों के मध्य राजनीतिक, आर्थिक, सुरक्षा अथवा सामाजिक-सांस्कृतिक सहयोग की प्रक्रिया से है। यह शासन का एक मध्यवर्ती स्तर है, जो राष्ट्र-राज्य और वैश्विक व्यवस्था के बीच स्थित होता है। इस स्तर पर विभिन्न देश साझा चुनौतियों का समाधान करने तथा सामूहिक समृद्धि प्राप्त करने के उद्देश्य से परस्पर सहयोग करते हैं।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

आधुनिक क्षेत्रवाद का उद्भव द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त, सन् 1945 के बाद स्थापित वैश्विक व्यवस्था से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। युद्ध की व्यापक विनाशलीला के बाद राष्ट्रों ने यह अनुभव किया कि आर्थिक पुनर्निर्माण, संघर्षों की रोकथाम तथा स्थिरता की स्थापना के लिए अलगाव नहीं, बल्कि सहयोग आवश्यक है। यूरोपीय कोयला एवं इस्पात समुदाय (1951)ने क्षेत्रीय एकीकरण की आधारशिला रखी। इसी प्रकार विश्व के अन्य भागों में भी नवस्वतंत्र राष्ट्रों ने अपनी सम्प्रभुता की रक्षा करते हुए सामूहिक शक्ति के लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से क्षेत्रीय सहयोग को अपनाया।

शीतयुद्ध काल में क्षेत्रीय संगठन प्रायः वैचारिक अथवा सुरक्षा सम्बन्धी गठबंधनों पर आधारित थे, जैसे—नाटो, सीटो तथा वार्सा संधि। शीतयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् क्षेत्रवाद को नई गति मिली और उसका ध्यान व्यापार उदारीकरण, अंतरराष्ट्रीय सम्पर्क-सुदृढ़ीकरण तथा सतत विकास की ओर केन्द्रित हो गया।

समकालीन क्षेत्रवाद

वर्तमान समय में क्षेत्रवाद केवल भौगोलिक सीमाओं तक सीमित नहीं है। यह विभिन्न महाद्वीपों के उन देशों को भी जोड़ता है जिनके आर्थिक अथवा राजनीतिक हित समान हैं। प्रमुख संगठनों में—

- **आसियान** — दक्षिण-पूर्व एशिया में एकता, स्थिरता और सहयोग को समर्पित संगठन।
- **यूरोपीय संघ** — अधिराष्ट्रीय सहयोग का विश्व का सर्वाधिक विकसित स्वरूप।
- **ब्रिक्स** — वैश्विक दक्षिण की उभरती हुई प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं का समूह।

- **G 21**— अफ्रीकी संघ को सम्मिलित करने वाला विस्तारित वैश्विक आर्थिक मंच।

क्षेत्रीय संगठनों का महत्त्व

क्षेत्रीय संगठन अनेक महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाते हैं—

- **आर्थिक एकीकरण** — मुक्त व्यापार, निवेश तथा साझा बाज़ारों को बढ़ावा देना।
- **सुरक्षा सहयोग** — शांति, स्थिरता तथा संघर्षों की रोकथाम सुनिश्चित करना।
- **सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान** — पारस्परिक समझ तथा सांस्कृतिक कूटनीति को सुदृढ़ करना।
- **सामूहिक वार्ता-शक्ति** — छोटे अथवा विकासशील देशों को वैश्विक संस्थाओं में अधिक प्रभावशाली आवाज़ प्रदान करना।

क्षेत्रीयता और वैश्वीकरण

क्षेत्रीयता और वैश्वीकरण परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। वैश्वीकरण व्यापार और प्रौद्योगिकी के माध्यम से सभी देशों को जोड़ता है, जबकि क्षेत्रीयता इस व्यापक वैश्विक तंत्र को सुव्यवस्थित साझेदारियों के माध्यम से सुदृढ़ बनाती है। प्रभावी क्षेत्रीय सहयोग देशों को वैश्विक व्यवस्था के भीतर अपनी स्थानीय आवश्यकताओं और वास्तविकताओं का समाधान करने में सक्षम बनाता है। इस प्रकार यह राष्ट्रीय संप्रभुता और परस्पर निर्भरता के बीच संतुलन स्थापित करता है।

संक्षेप में, क्षेत्रीय संगठन राष्ट्रीय हितों और वैश्विक शासन के मध्य सेतु का कार्य करते हैं। वे सुरक्षा, विकास तथा पर्यावरणीय चुनौतियों के प्रबंधन में अंतरराष्ट्रीय समुदाय की भूमिका को दिशा प्रदान करते हैं। सामूहिक रूप से वे बहुध्रुवीय विश्व-व्यवस्था की ऐसी संरचना का निर्माण करते हैं, जो संवाद, समावेशिता और सतत विकास पर बल देती है।

4.3 दक्षिण-पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संगठन (आसियान)

4.3.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं उद्देश्य

दक्षिण-पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संगठन (आसियान) की स्थापना **8 अगस्त 1967** को बैंकॉक (थाईलैंड) में आसियान घोषणा (बैंकॉक घोषणा) पर हस्ताक्षर के माध्यम से हुई। इसके 5 संस्थापक सदस्य थे—

इंडोनेशिया, मलेशिया, फ़िलीपींस, सिंगापुर थाईलैंड

इस संगठन का उदय ऐसे समय में हुआ, जब दक्षिण-पूर्वी एशिया शीत युद्ध, वैचारिक संघर्षों तथा क्षेत्रीय अस्थिरता से प्रभावित था। संस्थापक नेताओं का उद्देश्य आपसी विश्वास स्थापित करना, सहयोग को प्रोत्साहित करना तथा उस क्षेत्र में स्थायी शांति सुनिश्चित करना था, जो पहले अविश्वास और औपनिवेशिक विरासत के कारण विभाजित रहा था।

समय के साथ आसियान का विस्तार हुआ और इसमें निम्नलिखित देश सम्मिलित हुए—

- **ब्रुनेई दारुस्सलाम — 1984**

- **वियतनाम — 1995**
- **लाओ जनवादी लोकतांत्रिक गणराज्य तथा म्यांमार — 1997**
- **कंबोडिया — 1999**

इस विस्तार के परिणामस्वरूप आज का **दस-सदस्यीय आसियान समुदाय** अस्तित्व में आया।

बैंकॉक घोषणा तथा उसके पश्चात् स्वीकृत चार्टरों के अनुसार आसियान के प्रमुख उद्देश्य

1. क्षेत्र में आर्थिक वृद्धि, सामाजिक प्रगति तथा सांस्कृतिक विकास को तीव्र गति प्रदान करना।
2. न्याय, विधि के शासन तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणापत्र के सिद्धांतों के प्रति निष्ठा के आधार पर परस्पर सम्मान बनाए रखते हुए क्षेत्रीय शांति एवं स्थिरता को प्रोत्साहित करना।
3. समान हितों से संबंधित विषयों पर सक्रिय सहयोग तथा पारस्परिक सहायता को बढ़ावा देना।
4. क्षेत्रीय समस्याओं का शांतिपूर्ण समाधान करने के लिए संवाद एवं सहयोग की प्रभावी व्यवस्था उपलब्ध कराना।
5. बाहरी हस्तक्षेप अथवा प्रभुत्व के विरुद्ध क्षेत्रीय पहचान तथा सामूहिक सुदृढ़ता को बनाए रखना।

इन उद्देश्यों के क्रमिक विकास का परिणाम आसियान घोषणापत्र (2008) के रूप में सामने आया, जिसने आसियान को एक शिथिल संगठन से परिवर्तित कर स्पष्ट संस्थागत ढाँचे वाला विधिसम्मत एवं नियमाधारित संगठन बना दिया।

4.3.2 संस्थागत संरचना तथा निर्णय-निर्माण

आसियान की संस्थागत संरचना किसी अधिराष्ट्रीय व्यवस्था के स्थान पर सहयोग एवं सर्वसम्मति पर आधारित उसके स्वरूप को 3

य परिषद: यह सदस्य देशों के विदेश मंत्रियों से मिलकर बनी होती है। इसका कार्य शिखर सम्मेलनों की तैयारी करना तथा विभिन्न क्षेत्रों के मध्य समन्वित सहयोग सुनिश्चित करना है।

- **सामुदायिक परिषदें**: आसियान समुदाय के तीन प्रमुख स्तंभ हैं और प्रत्येक का अपना एक परिषद है—
  1. आसियान राजनीतिक–सुरक्षा समुदाय
  2. आसियान आर्थिक समुदाय
  3. आसियान सामाजिक–सांस्कृतिक समुदाय
- **आसियान सचिवालय:** इसका मुख्यालय जकार्ता (इंडोनेशिया) में स्थित है। इसका नेतृत्व महासचिव करते हैं। यह समन्वय, नीतियों की निगरानी तथा प्रशासनिक सहयोग सुनिश्चित करता है।
- **आसियान अंतर-संसदीय सभा :य**ह सदस्य देशों की विधायिकाओं के मध्य संवाद एवं सहयोग के लिए एक साझा मंच उपलब्ध कराती है।
- **निर्णय-निर्माण प्रक्रिया:** आसियान सर्वसम्मति तथा आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने के सिद्धांत का पालन करता है। सभी निर्णय परस्पर विचार-विमर्श एवं सहमति से लिए जाते हैं, जिसे "आसियान पद्धति"

कहा जाता है। यद्यपि यह व्यवस्था एकता एवं सामंजस्य को प्रोत्साहित करती है, फिर भी आलोचकों का मत है कि संकट की परिस्थितियों में इससे निर्णय लेने एवं प्रतिक्रिया देने की गति धीमी हो सकती है।

4.3.3 आर्थिक एकीकरण तथा राजनीतिक सहयोग

आसियान एक राजनीतिक गठबंधन से विकसित होकर विश्व की सबसे गतिशील क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं में से एक बन गया है। आसियान मुक्त व्यापार क्षेत्र की स्थापना वर्ष 1992 में की गई, जिसके माध्यम से सदस्य देशों ने सीमा शुल्क में कमी की तथा क्षेत्रीय आपूर्ति शृंखलाओं को प्रोत्साहन दिया।

आर्थिक सहयोग एवं पहलें

- **आसियान आर्थिक समुदाय** की स्थापना वर्ष 2015 में एकीकृत बाज़ार तथा उत्पादन आधार के निर्माण के उद्देश्य से की गई, जिससे वस्तुओं, सेवाओं, निवेश तथा कुशल श्रमिकों का निर्बाध आवागमन सुनिश्चित हो सके।
- **क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी** एक ऐतिहासिक व्यापारिक समझौता है, जिस पर नवम्बर 2020 में आसियान तथा उसके प्रमुख सहयोगी देशों—चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड—के मध्य हस्ताक्षर किए गए। इसके परिणामस्वरूप विश्व का सबसे बड़ा व्यापारिक समूह अस्तित्व में आया।
- डिजिटल अर्थव्यवस्था, सतत विकास तथा जलवायु अनुकूलन क्षमता के क्षेत्रों में सहयोग नई नीतिगत प्राथमिकताओं के रूप में उभरा है।

राजनीतिक एवं सुरक्षा सहयोग

- **मैत्री एवं सहयोग संधि (1976)** ने क्षेत्र में शांति तथा तटस्थता की आधारशिला रखी।
- **आसियान क्षेत्रीय मंच** एशिया–प्रशांत क्षेत्र की प्रमुख शक्तियों, जैसे—संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, भारत तथा रूस—के बीच संवाद को प्रोत्साहित करता है।
- **आसियान रक्षा मंत्रियों की बैठक** क्षेत्रीय सुरक्षा साझेदारी को सुदृढ़ बनाती है।
- मानवाधिकार तंत्र, जैसे आसियान अंतर-सरकारी मानवाधिकार आयोग, साझा मूल्यों की दिशा में क्रमिक मानकगत विकास का संकेत देते हैं।

समग्र रूप से, आसियान के आर्थिक तथा राजनीतिक सहयोग ने क्षेत्र में स्थिरता और तीव्र आर्थिक प्रगति को बढ़ावा दिया है, जिसके परिणामस्वरूप यह क्षेत्र वैश्विक विनिर्माण तथा निवेश का प्रमुख केंद्र बन गया है।

4.3.4 क्षेत्रीय एवं वैश्विक परिप्रेक्ष्य में आसियान की भूमिका

एशिया–प्रशांत क्षेत्र की संरचना में आसियान का **केंद्रीय स्थान** है, जिसे प्रायः **आसियान केंद्रीयता** कहा जाता है। इस सिद्धांत का अभिप्राय यह है कि प्रमुख शक्तियाँ दक्षिण-पूर्व एशिया में प्रत्यक्ष प्रतिस्पर्धा करने के स्थान पर आसियान-नेतृत्व वाली व्यवस्थाओं के माध्यम से परस्पर सहयोग और संवाद करती हैं।

क्षेत्रीय भूमिका

1. यह भारत–प्रशांत क्षेत्र में बहुपक्षीय सहयोग की प्रमुख प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करता है।

2. यह महाशक्तियों के मध्य उत्पन्न तनावों का संतुलन स्थापित कर क्षेत्रीय तटस्थता को बनाए रखने में सहायक होता है।

3. यह आसियान संपर्कता महायोजना जैसी पहलों के माध्यम से क्षेत्रीय आर्थिक संपर्क और परस्पर जुड़ाव को सुदृढ़ करता है।

वैश्विक भूमिका

1. आसियान संयुक्त राष्ट्र तथा विश्व व्यापार संगठन जैसे वैश्विक मंचों पर विकसित और विकासशील देशों के मध्य एक प्रभावशाली सेतु एवं मध्यस्थ स्वर के रूप में कार्य करता है।

2. यह संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, भारत, जापान, ऑस्ट्रेलिया तथा यूरोपीय संघ सहित प्रमुख देशों एवं संगठनों के साथ संवादात्मक सहभागिता बनाए रखता है।

3. आसियान का सहयोगात्मक स्वरूप अन्य क्षेत्रीय संगठनों के लिए प्रेरणास्रोत है तथा सहमति-आधारित बहुपक्षीय व्यवस्था का आदर्श मानक प्रस्तुत करता है।

चुनौतियाँ

- राजनीतिक व्यवस्थाओं, विकास के स्तरों तथा बाह्य नीतिगत झुकावों में विद्यमान भिन्नताएँ कभी-कभी आसियान की एकता की परीक्षा लेती हैं।

- दक्षिण चीन सागर से संबंधित विवाद, जलवायु परिवर्तन, मानवाधिकार संबंधी चिंताएँ तथा आतंकवाद, साइबर अपराध और वैश्विक महामारियों जैसी अपारम्परिक सुरक्षा चुनौतियाँ सामूहिक एवं समन्वित उत्तरदायित्व की अपेक्षा करती हैं।

इन चुनौतियों के बावजूद, आसियान क्षेत्रीय शांति, स्थिरता और समृद्धि का एक सुदृढ़ आधार बना हुआ है तथा एशिया-प्रशांत क्षेत्रीय सहयोग के भविष्य के निर्माण में एक सम्मानित और प्रभावशाली भूमिका निभा रहा है।

4.5 ब्रिक्स (उभरती अर्थव्यवस्थाओं का समूह)

4.5.1 उत्पत्ति और उद्देश्य

ब्रिक शब्द का प्रथम प्रयोग वर्ष 2001 में ब्रिटिश अर्थशास्त्री जिम ओ'नील ने, जो गोल्डमैन सैक्स से संबद्ध थे, ब्राज़ील, रूस, भारत और चीन जैसी तीव्र गति से विकसित हो रही चार अर्थव्यवस्थाओं का उल्लेख करने के लिए किया। यह अनुमान लगाया गया था कि इन देशों की संयुक्त आर्थिक क्षमता इक्कीसवीं शताब्दी की वैश्विक अर्थव्यवस्था को नया स्वरूप प्रदान करेगी। यह संक्षिप्त नाम विभिन्न महाद्वीपों के प्रमुख विकासशील देशों के उदय का प्रतीक था, जो परंपरागत पश्चिम-प्रधान आर्थिक व्यवस्था को चुनौती देने की क्षमता रखते थे।

प्रथम आधिकारिक ब्रिक शिखर सम्मेलन जून 2009 में रूस के येकातेरिनबुर्ग में आयोजित हुआ, जिसने इस अनौपचारिक समूह को राजनीतिक एवं आर्थिक संवाद के एक सशक्त मंच का स्वरूप प्रदान किया। मूल चार सदस्य देशों के आमंत्रण पर दक्षिण अफ्रीका वर्ष 2010 में इसमें सम्मिलित हुआ, जिसके बाद यह समूह ब्रिक्स कहलाने लगा।

ब्रिक्स का मूल उद्देश्य पारस्परिक विकास को बढ़ावा देना तथा वैश्विक शासन व्यवस्था में सुधार लाना है। यह समूह ऐसी बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था के निर्माण का समर्थक है, जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्थापित अंतरराष्ट्रीय

संस्थाओं, जैसे अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक, पर आधारित पुरानी संरचनाओं के स्थान पर वर्तमान वैश्विक आर्थिक वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित करे। अपने संसाधनों का समन्वित उपयोग तथा नीतिगत सहयोग के माध्यम से ब्रिक्स देश वैश्विक आर्थिक एवं राजनीतिक निर्णय-निर्माण में अपनी सामूहिक भूमिका को अधिक प्रभावशाली बनाना चाहते हैं।

समग्र रूप से, ब्रिक्स वैश्विक दक्षिण के एक प्रभावशाली उदय का प्रतिनिधित्व करता है, जो समावेशिता, संतुलित विकास तथा वैश्विक शक्ति के अधिक न्यायसंगत वितरण का समर्थन करता है।

4.5.2 संस्थागत तंत्र – नवीन विकास बैंक तथा आकस्मिक आरक्षित व्यवस्था

यद्यपि ब्रिक्स की शुरुआत एक अनौपचारिक परामर्श मंच के रूप में हुई थी, किन्तु समय के साथ इसने व्यावहारिक सहयोग को सुदृढ़ करने के लिए संस्थागत संरचनाओं का विकास किया। इसके दो सबसे महत्त्वपूर्ण तंत्र हैं— नव विकास बैंक और आकस्मिक आरक्षित व्यवस्था। इन दोनों की स्थापना वर्ष 2014 में ब्राज़ील के फ़ोर्टालेज़ा नगर में आयोजित छठे ब्रिक्स शिखर सम्मेलन के दौरान की गई।

नव विकास बैंक

नव विकास बैंक की स्थापना ब्रिक्स देशों तथा अन्य उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में आधारभूत संरचना एवं सतत विकास से संबंधित परियोजनाओं के लिए संसाधन जुटाने के उद्देश्य से की गई।

- **मुख्यालय — शंघाई, चीन।**
- **प्रारम्भिक अधिकृत पूँजी** — 100 अरब अमेरिकी डॉलर।
- **उद्देश्य** — वर्तमान बहुपक्षीय वित्तीय संस्थानों का प्रतिस्थापन करना नहीं, बल्कि उन्हें अधिक तीव्र, अधिक लचीली तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप वित्तीय सहायता प्रदान करके उनका पूरक बनना।

प्रत्येक सदस्य देश अंशपूँजी में समान योगदान देता है, जो ब्रिक्स के समानता और गैर-पदानुक्रम के सिद्धान्त को प्रतिबिंबित करता है। नव विकास बैंक ने नवीकरणीय ऊर्जा, नगरीय परिवहन, जल प्रबंधन तथा प्रौद्योगिकी संपर्क जैसे क्षेत्रों में अनेक परियोजनाओं को वित्तपोषित किया है। व्यापक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए इसने भारत, दक्षिण अफ्रीका तथा रूस में क्षेत्रीय कार्यालय भी स्थापित किए हैं।

आकस्मिक आरक्षित व्यवस्था (सीआरए)

आकस्मिक आरक्षित व्यवस्था 100 अरब अमेरिकी डॉलर की एक वित्तीय सुरक्षा व्यवस्था है, जिसका उद्देश्य भुगतान संतुलन पर अल्पकालिक दबाव का सामना कर रहे सदस्य देशों को तरलता सहायता प्रदान करना है। यह संकट-निवारण तंत्र के रूप में कार्य करती है, जिससे ब्रिक्स देश अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे पश्चिम-प्रधान ऋणदाताओं पर अत्यधिक निर्भरता से बच सकते हैं।

इन संस्थाओं के माध्यम से ब्रिक्स अपने राजनीतिक संवाद को ठोस आर्थिक सहयोग में परिवर्तित करता है, जिससे सदस्य देशों को वित्तीय स्थिरता सुदृढ़ करने, बाह्य आर्थिक झटकों का सामना करने तथा अपनी शर्तों पर विकास करने में सहायता मिलती है।

4.5.3 रणनीतिक उद्देश्य और वैश्विक प्रभाव

ब्रिक्स केवल उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं का समूह नहीं है, बल्कि यह वैश्विक शासन व्यवस्था में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से गठित एक रणनीतिक साझेदारी है। इसके उद्देश्य आर्थिक, राजनीतिक तथा विकासात्मक—तीनों आयामों तक विस्तृत हैं।

आर्थिक दृष्टि से, ब्रिक्स सदस्य देशों के बीच व्यापार और निवेश को बढ़ावा देने, अमेरिकी डॉलर पर निर्भरता कम करने तथा सीमा-पार लेन-देन में स्थानीय मुद्राओं के उपयोग को प्रोत्साहित करने का प्रयास करता है। इससे क्रमशः बहुध्रुवीय वित्तीय व्यवस्था की स्थापना को बल मिलता है। साथ ही यह डिजिटल अर्थव्यवस्था, ऊर्जा सुरक्षा, कृषि नवाचार तथा जलवायु अनुकूलन जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में सहयोग को भी प्रोत्साहित करता है।

राजनीतिक दृष्टि से, ब्रिक्स संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक जैसे वैश्विक संस्थानों में सुधार का समर्थन करता है, ताकि सभी देशों को अधिक न्यायसंगत और संतुलित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके।

विकासशील देशों के हितों का प्रतिनिधित्व करते हुए ब्रिक्स स्वयं को वैश्विक उत्तर और वैश्विक दक्षिण के बीच एक सेतु के रूप में स्थापित करता है। यह टकराव के स्थान पर संवाद को प्रोत्साहित करता है। ब्रिक्स संपर्क शिखर सम्मेलनों तथा गैर-सदस्य देशों के साथ संवाद के माध्यम से यह समूह अपनी वैश्विक पहुँच और वैधता का निरंतर विस्तार करता है।

विकास के क्षेत्र में ब्रिक्स सतत विकास तथा सामाजिक समता को बढ़ावा देता है। स्वास्थ्य, शिक्षा, महिला सशक्तिकरण तथा हरित प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में इसके सामूहिक प्रयास समग्र विकास के प्रति इसकी प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं।

विश्व मामलों में **ब्रिक्स का प्रभाव** निरंतर बढ़ रहा है। सामूहिक रूप से ब्रिक्स देशों का योगदान निम्नलिखित है—

- **विश्व की कुल जनसंख्या का 42 प्रतिशत से अधिक।**
- **वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 27 प्रतिशत।**
- **अंतरराष्ट्रीय व्यापार का लगभग 20 प्रतिशत।**

G-21, संयुक्त राष्ट्र तथा विश्व व्यापार संगठन जैसे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर अपने दृष्टिकोण का समन्वय करके सदस्य देश वैश्विक नियमों और मानकों को प्रभावित करने की अपनी क्षमता को और अधिक सुदृढ़ बनाते हैं।

भिन्न-भिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं, भू-राजनीतिक हितों तथा आर्थिक असमानताओं जैसी चुनौतियों के बावजूद ब्रिक्स दक्षिण-दक्षिण सहयोग का एक सशक्त प्रतीक तथा उभरती हुई **बहुध्रुवीय वैश्विक व्यवस्था** का एक प्रमुख आधार बना हुआ है।

4.6 G-21 (वैश्विक आर्थिक मंच)

4.6.1 गठन एवं उद्देश्य

बीस देशों का समूह (जी-20) की स्थापना वर्ष **1999** में 1997–98 के **एशियाई वित्तीय संकट** के पश्चात् विश्व की प्रमुख विकसित एवं उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं के बीच उच्च-स्तरीय संवाद के लिए एक मंच के रूप में की गई थी। प्रारम्भ में यह **वित्त मंत्रियों तथा केंद्रीय बैंक के गवर्नरों** की बैठक के रूप में कार्य करता था, जिसका उद्देश्य वैश्विक वित्तीय व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना तथा भविष्य में आने वाले वित्तीय संकटों की रोकथाम करना था।

किन्तु **2008 के वैश्विक वित्तीय संकट** के बाद जी-20 को राष्ट्राध्यक्षों एवं शासनाध्यक्षों के स्तर पर उन्नत कर दिया गया, जिससे यह अंतरराष्ट्रीय आर्थिक सहयोग का सर्वोच्च मंच बन गया।

प्रारम्भ में **जी-20 में 19 स्वतंत्र देश** तथा **यूरोपीय संघ** एक सामूहिक सदस्य के रूप में सम्मिलित थे। यह समूह संयुक्त रूप से **वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 85 प्रतिशत, अंतरराष्ट्रीय व्यापार का 75 प्रतिशत तथा विश्व की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करता था।**

सितम्बर 2023 में नई दिल्ली (भारत) में आयोजित जी-20 शिखर सम्मेलन के दौरान **अफ्रीकी संघ** को **स्थायी सदस्य** के रूप में औपचारिक रूप से सम्मिलित किया गया, जिससे यह समूह जी-21 बन गया। यह ऐतिहासिक निर्णय अधिक **समावेशी और प्रतिनिधित्वपूर्ण वैश्विक शासन व्यवस्था** की दिशा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि सिद्ध हुआ तथा अफ्रीका को विश्व के सबसे प्रभावशाली आर्थिक मंचों में स्थायी प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ।

G-21 के प्रमुख उद्देश्य

1. प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के बीच सहयोग को सुदृढ़ बनाकर वैश्विक आर्थिक स्थिरता तथा सतत विकास को प्रोत्साहित करना।
2. संकटों की रोकथाम तथा उनसे उबरने में सहायता के लिए समष्टि आर्थिक नीतियों का समन्वय करना।
3. जलवायु परिवर्तन, ऊर्जा संक्रमण, डिजिटल नवाचार तथा जनस्वास्थ्य सहित वैश्विक स्तर की तात्कालिक चुनौतियों का समाधान करना।
4. विकासशील तथा उभरती अर्थव्यवस्थाओं को अधिक न्यायसंगत प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए वैश्विक संस्थाओं को सुदृढ़ बनाना।
5. विशेष रूप से अफ्रीका सहित वैश्विक दक्षिण की जनसांख्यिकीय तथा विकासात्मक क्षमताओं को मान्यता देकर उसकी सामर्थ्य को बढ़ाना।

अफ्रीकी संघ को पूर्ण सदस्यता प्रदान किए जाने से जी-20 एक विशिष्ट आर्थिक मंच से विकसित होकर व्यापक जी-21 – वैश्विक आर्थिक मंच में परिवर्तित हो गया, जो बहुध्रुवीय विश्व की वास्तविकताओं का अधिक यथार्थ प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है।

4.6.2 संरचना एवं कार्यप्रणाली

अनेक औपचारिक अंतरराष्ट्रीय संगठनों के विपरीत, जी-21 का कोई स्थायी सचिवालय अथवा मुख्यालय नहीं है। यह घूर्णन अध्यक्षता व्यवस्था के माध्यम से संचालित होता है, जिसमें प्रत्येक वर्ष सदस्य देशों के बीच अध्यक्षता का परिवर्तन होता है। अध्यक्ष देश कार्यसूची निर्धारित करने, नेताओं के शिखर सम्मेलन का आयोजन करने तथा पूरे वर्ष प्रारम्भिक बैठकों का समन्वय करने के लिए उत्तरदायी होता है।

मेज़बान देश त्रयी व्यवस्था (वर्तमान, पूर्व तथा आगामी अध्यक्ष देशों का समूह) के साथ मिलकर कार्य करता है, जिससे निरंतरता तथा नीतिगत सामंजस्य बना रहता है। यह लचीली व्यवस्था जी-21 को बदलती वैश्विक चुनौतियों के प्रति शीघ्र एवं प्रभावी ढंग से प्रतिक्रिया देने की क्षमता प्रदान करती है।

G-21 तंत्र के प्रमुख घटक

- **नेताओं का शिखर सम्मेलन** – यह सर्वोच्च राजनीतिक मंच है, जहाँ राष्ट्राध्यक्ष अथवा शासनाध्यक्ष रणनीतिक प्राथमिकताओं पर विचार-विमर्श करते हैं।
- **वित्त मंत्रियों एवं केंद्रीय बैंक के गवर्नरों की बैठकें** – इन बैठकों में मौद्रिक, राजकोषीय तथा वित्तीय विनियमन संबंधी नीतियों का समन्वय किया जाता है।
- **शेरपा तंत्र** – प्रत्येक देश के शेरपा (शासनाध्यक्ष के व्यक्तिगत प्रतिनिधि) के नेतृत्व में संचालित यह तंत्र शिक्षा, जलवायु तथा स्वास्थ्य जैसे गैर-वित्तीय विषयों पर कार्य करता है।
- **सहभागिता समूह** – इनमें उद्योग, नागरिक समाज, नीति अनुसंधान संस्थान, युवा, महिलाएँ, श्रमिक तथा नवप्रवर्तनशील उद्यमों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। ये समूह विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर नीतिगत सुझाव प्रदान करते हैं।

जी-21 की अध्यक्षता अत्यंत महत्त्वपूर्ण कूटनीतिक भूमिका निभाती है और प्रायः आर्थिक विषयों से आगे बढ़कर वैश्विक विमर्श की दिशा निर्धारित करती है। इसकी गतिविधियों का समापन नेताओं की घोषणा के रूप में होता है, जिसमें साझा प्रतिबद्धताओं का उल्लेख किया जाता है। यद्यपि यह विधिक रूप से बाध्यकारी नहीं होती, फिर भी इसका राजनीतिक महत्त्व अत्यधिक होता है।

सदस्यता संरचना

क्षेत्र	**सदस्य देश**
उत्तरी अमेरिका	कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, मेक्सिको
दक्षिण अमेरिका	अर्जेंटीना, ब्राज़ील
यूरोप	फ़्रांस, जर्मनी, इटली, यूनाइटेड किंगडम, यूरोपीय संघ
एशिया–प्रशांत	ऑस्ट्रेलिया, चीन, भारत, इंडोनेशिया, जापान, दक्षिण कोरिया
यूरेशिया	रूस, तुर्की, सऊदी अरब
अफ्रीका	दक्षिण अफ्रीका, अफ्रीकी संघ (नवीनतम स्थायी सदस्य के रूप में)

अफ्रीकी संघ का समावेश अफ्रीका की बढ़ती आर्थिक तथा जनसांख्यिकीय भूमिका की महत्त्वपूर्ण स्वीकृति का प्रतीक है। इससे यह समूह केवल औद्योगिक शक्तियों के क्लब तक सीमित न रहकर एक वास्तविक वैश्विक मंच के रूप में विकसित हुआ है।

4.6.3 वैश्विक आर्थिक शासन एवं क्षेत्रीय समन्वय में भूमिका

जी-21 वैश्विक आर्थिक शासन के निर्माण तथा उसके संचालन में केंद्रीय भूमिका निभाता है। यह प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं, अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं (जैसे—अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा विश्व व्यापार संगठन) और क्षेत्रीय संगठनों के बीच समन्वय स्थापित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण सेतु है।

1. संकट प्रबंधन एवं पुनर्प्राप्ति

वर्ष 2008 के वैश्विक वित्तीय संकट के बाद जी-20 तथा अब जी-21 वैश्विक संकटों के समाधान हेतु प्रमुख मंच के रूप में कार्य कर रहा है। इसने समन्वित राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियों के माध्यम से बाज़ारों को स्थिर करने और आर्थिक पुनर्प्राप्ति को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। साथ ही, कोविड-19 महामारी के दौरान टीकों के वितरण, ऋण स्थगन तथा वैश्विक स्वास्थ्य व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए संसाधनों के समन्वित उपयोग में भी इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

2. आर्थिक शासन एवं वित्तीय विनियमन

जी-21 वैश्विक वित्तीय पर्यवेक्षण, विनियमन तथा न्यायसंगत आर्थिक शासन में सुधार सुनिश्चित करने के लिए वित्तीय स्थिरता बोर्ड तथा अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे संस्थानों के साथ घनिष्ठ सहयोग करता है। इसका उद्देश्य आर्थिक विकास और सतत् विकास के बीच संतुलन स्थापित करना, उत्तरदायी ऋण व्यवस्था को प्रोत्साहित करना, कर पारदर्शिता बढ़ाना तथा डिजिटल वित्तीय समावेशन को सुदृढ़ करना है।

3. उत्तर–दक्षिण विभाजन को पाटना

अफ्रीकी संघ के समावेश से जी-21 की प्रतिनिधिकता बढ़ी है, जिससे यह अधिक लोकतांत्रिक और समावेशी मंच बन गया है। अफ्रीकी संघ की उपस्थिति के कारण विकासशील तथा अल्पविकसित देशों की चिंताओं को अधिक प्रभावी स्वर मिला है। इससे निर्धनता उन्मूलन, आधारभूत संरचना के लिए वित्तपोषण तथा जलवायु अनुकूलन क्षमता जैसे अफ्रीका से जुड़े मुद्दों को वैश्विक विमर्श में प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है।

4. क्षेत्रीय एवं वैश्विक समन्वय

जी-21 यूरोपीय संघ, दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्रों का संगठन, ब्रिक्स तथा अफ्रीकी महाद्वीपीय मुक्त व्यापार क्षेत्र जैसे क्षेत्रीय आर्थिक समूहों के साथ समन्वय स्थापित कर नीतिगत सहयोग को प्रोत्साहित करता है।

5. सतत विकास कार्यसूची को आगे बढ़ाना

जी-21 की विचार-विमर्श प्रक्रिया का एक प्रमुख विषय संयुक्त राष्ट्र की वर्ष 2030 की सतत विकास कार्यसूची तथा जलवायु परिवर्तन पर पेरिस समझौते को आगे बढ़ाना है। यह मंच राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय नीतियों को वैश्विक सतत विकास लक्ष्यों के अनुरूप समन्वित करने में सहायक है। इसके अंतर्गत हरित वित्त, नवीकरणीय ऊर्जा की ओर संक्रमण तथा जलवायु अनुकूलन को विशेष महत्त्व दिया जाता है।

इस प्रकार, जी-20 से जी-21 की ओर विकास वैश्विक शासन व्यवस्था में एक परिवर्तनकारी चरण का प्रतीक है। यह अफ्रीका की महत्त्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करते हुए अधिक न्यायसंगत एवं समावेशी आर्थिक व्यवस्था को अपनाता है। यद्यपि सदस्य देशों के परस्पर विरोधी हितों तथा इसके समझौतों की गैर-बाध्यकारी प्रकृति जैसी चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं, फिर भी यह अंतरराष्ट्रीय आर्थिक समन्वय का सर्वाधिक प्रभावशाली मंच बना हुआ है।

वैश्विक ढाँचे में क्षेत्रीय दृष्टिकोणों का समावेश करके जी-21 (वैश्विक आर्थिक मंच) सहयोगात्मक बहुपक्षवाद तथा संतुलित वैश्वीकरण की भावना का प्रतिनिधित्व करता है, जो स्थिर, सतत और समावेशी विश्व अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए अत्यंत आवश्यक है।

4.7 तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य — क्षेत्रीय संगठन और वैश्विक शासन

क्षेत्रीय संगठन अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के सुदृढ़ आधार-स्तंभ बन चुके हैं। ये स्थानीय अनुभवों को वैश्विक शासन-तंत्र से जोड़ते हैं। चाहे वह आसियान, यूरोपीय संघ, ब्रिक्स अथवा जी-21 हो, प्रत्येक संगठन अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, आर्थिक क्षमता तथा संस्थागत दर्शन को प्रतिबिंबित करता है। फिर भी इन सभी का साझा उद्देश्य परस्पर निर्भरता का प्रभावी प्रबंधन करना, स्थिरता बनाए रखना तथा तीव्र गति से वैश्वीकरण की ओर बढ़ती दुनिया में अपने सदस्य देशों की सामूहिक आवाज़ को सशक्त बनाना है।

1.आधार एवं सिद्धांत

क्षेत्रीय सहयोग की वैचारिक आधारशिलाएँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। यूरोपीय संघ अधिराष्ट्रीय एकीकरण का सर्वोच्च उदाहरण है, जहाँ सदस्य देशों द्वारा अपनी संप्रभु शक्तियों के आंशिक हस्तांतरण के परिणामस्वरूप यूरोपीय आयोग, यूरोपीय संसद तथा न्यायालय जैसी अत्यधिक संस्थागत व्यवस्थाएँ विकसित हुई हैं।

इसके विपरीत, आसियान "आसियान पद्धति" का अनुसरण करता है, जिसकी विशेषताएँ हैं—आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना, अनौपचारिकता तथा सर्वसम्मति। ब्रिक्स और जी-21 अंतर-सरकारी सिद्धांतों पर आधारित हैं तथा विधिक रूप से बाध्यकारी प्रतिबद्धताओं के स्थान पर समन्वय को प्राथमिकता देते हैं।

जहाँ यूरोपीय संघ नियम-आधारित शासन एवं समान विधायी व्यवस्था को महत्त्व देता है, वहीं आसियान लचीलापन तथा राष्ट्रीय स्वायत्तता के सम्मान पर बल देता है। ब्रिक्स और जी-21, वैश्विक एवं अंतर-क्षेत्रीय मंच होने के कारण, समान भागीदारी के आधार पर रणनीतिक संवाद को प्राथमिकता देते हैं तथा एकरूप नीतियों के स्थान पर साझा लक्ष्यों की प्राप्ति पर केंद्रित रहते हैं।

2. संस्थागत संरचना एवं निर्णय-निर्माण

तुलनात्मक अध्ययन का एक प्रमुख आधार संस्थागत गहराई है। यूरोपीय संघ इस दृष्टि से सबसे अधिक विकसित है, जहाँ स्वतंत्र प्रशासनिक तंत्र तथा विधायी अधिकार उपलब्ध हैं। इसके विपरीत, आसियान और ब्रिक्स सहयोगात्मक व्यवस्था का अनुसरण करते हैं तथा निर्णय-निर्माण के लिए सर्वसम्मति-आधारित प्रक्रिया पर निर्भर रहते हैं।

जी-21 घूर्णनशील अध्यक्षता प्रणाली के माध्यम से कार्य करता है, जिससे समावेशिता और निरंतरता बनी रहती है, किन्तु इसके पास स्थायी संस्थागत तंत्र नहीं है।

यह भिन्नता दर्शाती है कि क्षेत्रीय संगठन अपनी संरचनाओं को सांस्कृतिक परंपराओं तथा राजनीतिक वास्तविकताओं के अनुरूप ढालते हैं। आसियान की परामर्शात्मक व्यवस्था विविध राजनीतिक व्यवस्थाओं वाले क्षेत्र के लिए उपयुक्त है, जबकि यूरोपीय संघ की विधिक रूप से बाध्यकारी व्यवस्था यूरोप के भीतर युद्धों की पुनरावृत्ति को रोकने के प्रयासों से विकसित हुई। इसके विपरीत, ब्रिक्स और जी-21 कार्यात्मक बहुपक्षवाद का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो जटिल संवैधानिक ढाँचे के बिना विविध अर्थव्यवस्थाओं के मध्य व्यावहारिक सहयोग को प्रोत्साहित करता है।

3. आर्थिक एवं विकासोन्मुख अभिमुखता

प्रत्येक संगठन की आर्थिक दिशा उसके सदस्य देशों की विकासात्मक परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करती है—

- यूरोपीय संघ गहन आर्थिक एवं मौद्रिक एकीकरण को बढ़ावा देता है, जिसमें एकल बाज़ार तथा साझा मुद्रा यूरो सम्मिलित हैं।
- आसियान क्षेत्रीय व्यापार उदारीकरण तथा उत्पादन नेटवर्क पर बल देता है, जिन्हें आसियान आर्थिक समुदाय का समर्थन प्राप्त है।
- ब्रिक्स दक्षिण-दक्षिण आर्थिक सहयोग को प्रोत्साहित करता है तथा नव विकास बैंक के माध्यम से आधारभूत संरचना के विकास हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करता है।
- जी-21 विश्व के प्रमुख आर्थिक नीति मंच के रूप में कार्य करता है तथा प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के मध्य व्यापक आर्थिक नीतियों और वित्तीय शासन का समन्वय करता है।

यद्यपि इन संगठनों में अनेक भिन्नताएँ हैं, फिर भी सभी का उद्देश्य बाज़ारों को स्थिर बनाना, असमानता को कम करना तथा आर्थिक आघातों के विरुद्ध लचीलापन सुदृढ़ करना है। इससे यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्रीय सहयोग वैश्विक आर्थिक शासन का आधार है।

4. राजनीतिक एवं सामरिक आयाम

राजनीतिक दृष्टि से क्षेत्रीयता सामूहिक सौदेबाज़ी की क्षमता तथा सामरिक स्वायत्तता—दोनों को सुदृढ़ करती है। आसियान अपने राजनयिक तंत्रों, जैसे आसियान क्षेत्रीय मंच तथा पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन, के माध्यम से हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में स्थिरता बनाए रखता है। यूरोपीय संघ अनेक वैश्विक वार्ताओं में एकीकृत कूटनीतिक स्वर के साथ भाग लेता है और लोकतांत्रिक शासन तथा मानवाधिकारों के आदर्श मॉडल का प्रतिनिधित्व करता है।

इसके विपरीत, ब्रिक्स उभरती हुई शक्तियों के गठबंधन के रूप में कार्य करता है, जिसका उद्देश्य द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात स्थापित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में सुधार करना है। यह पश्चिमी प्रभुत्व के संतुलन के रूप में कार्य करते हुए बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था तथा वैश्विक दक्षिण के विकासात्मक एजेंडा को महत्त्व प्रदान करता है। जी-21, अफ्रीकी संघ के समावेशन के साथ, क्षेत्रीय एवं महाद्वीपीय दृष्टिकोणों को वैश्विक आर्थिक प्रबंधन में सम्मिलित करके वैश्विक नीति-निर्माण की वैधता को और अधिक सुदृढ़ करता है।

5. वैश्विक शासन में योगदान

वैश्विक शासन से आशय जलवायु परिवर्तन, वित्तीय संकट, स्वास्थ्य सुरक्षा तथा प्रवासन जैसी अंतरराष्ट्रीय चुनौतियों के सामूहिक प्रबंधन से है। क्षेत्रीय संगठन इस व्यवस्था के आधारभूत स्तंभ के रूप में कार्य करते हैं। वे एक ओर श्रेष्ठ कार्य-पद्धतियों के माध्यम से नीतिगत नवाचार को प्रोत्साहित करते हैं और दूसरी ओर विविध पक्षों को सम्मिलित करके प्रतिनिधित्व का संतुलन सुनिश्चित करते हैं।

यूरोपीय संघ के पर्यावरणीय विनियम वैश्विक जलवायु मानकों को प्रभावित करते हैं। आसियान का शांति-निर्माण प्रतिरूप संवाद के माध्यम से संघर्ष-निवारण का उदाहरण प्रस्तुत करता है। ब्रिक्स का नवीन विकास बैंक विकास-वित्त का एक वैकल्पिक मार्ग उपलब्ध कराता है तथा जी-२१ वैश्विक व्यापक आर्थिक निर्णयों को क्षेत्रीय विकास के उद्देश्यों के साथ समन्वित करता है। इस प्रकार, ये सभी संगठन बहुस्तरीय शासन व्यवस्था का निर्माण करते हैं, जिसमें वैश्विक मानकों को क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुरूप ढाला जाता है तथा क्षेत्रीय अनुभव भी वैश्विक व्यवस्था को प्रभावित करते हैं।

6.तुलनात्मक चुनौतियाँ

अपनी उपलब्धियों के बावजूद, क्षेत्रीय संगठन अनेक समान चुनौतियों का सामना करते हैं—

- भिन्न-भिन्न राजनीतिक व्यवस्थाएँ तथा विकास के असमान स्तर पूर्ण सहमति स्थापित करने में बाधा उत्पन्न करते हैं।
- वैश्विक शक्तियों की प्रतिद्वन्द्विता प्रायः क्षेत्रीय व्यवस्थाओं को प्रभावित करती है।
- संस्थागत दुर्बलताएँ, असमान क्षमताएँ तथा बाह्य निर्भरताएँ प्रभावी क्रियान्वयन को सीमित करती हैं। जलवायु परिवर्तन, डिजिटल रूपान्तरण तथा भू-राजनीतिक संकट जैसे विषय किसी एक क्षेत्र से परे व्यापक सहयोग की अपेक्षा करते हैं।

अतः प्रभावी क्षेत्रीयता का आधार लचीलापन, एकजुटता तथा वैश्विक संवाद के प्रति खुलापन बनाए रखना है।

7. समन्वित निष्कर्ष एवं विकसित होती प्रवृत्तियाँ

तुलनात्मक दृष्टि से ये संगठन एक निरन्तर क्रम को प्रदर्शित करते हैं— यूरोपीय संघ के गहन संस्थागत एकीकरण से लेकर आसियान के लचीले सहयोग, ब्रिक्स की रणनीतिक साझेदारी तथा जी-21 के वैश्विक समन्वय मंच तक। सामूहिक रूप से ये क्षेत्रीय बहुपक्षवाद की संरचना का निर्माण करते हैं तथा यह सिद्ध करते हैं कि विविध विकास-पथ परस्पर सह-अस्तित्व रखते हुए वैश्विक स्थिरता की प्राप्ति में एक-दूसरे के पूरक बन सकते हैं।

समकालीन युग में क्षेत्रीय संगठन अब पृथक संस्थाएँ नहीं रह गए हैं, बल्कि वे वैश्विक शासन-व्यवस्था के परस्पर जुड़े हुए महत्त्वपूर्ण घटक बन चुके हैं। संवाद को प्रोत्साहित करके, शक्ति-संतुलन बनाए रखकर तथा सतत विकास को बढ़ावा देकर ये सुनिश्चित करते हैं कि वैश्वीकरण अधिक समावेशी और न्यायसंगत बने। साझा उत्तरदायित्व और पारस्परिक सम्मान पर आधारित इनका पारस्परिक समन्वय सहयोगपूर्ण, सुदृढ़ तथा बहुध्रुवीय विश्व-व्यवस्था के निर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

4.8 सारांश

क्षेत्रीयता आधुनिक विश्व-व्यवस्था को आकार देने वाली एक महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरी है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात राष्ट्रों ने यह अनुभव किया कि शान्ति, विकास और स्थिरता की सर्वोत्तम स्थापना क्षेत्रीय तथा वैश्विक— दोनों स्तरों पर सहयोग के माध्यम से ही सम्भव है। इसी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप विभिन्न कार्यक्षेत्रों और संस्थागत संरचनाओं वाले क्षेत्रीय संगठनों का उदय हुआ।

दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्रों का संगठन (आसियान) सहमति-आधारित सहयोग का एशियाई प्रतिरूप प्रस्तुत करता है, जिसकी आधारशिला अहस्तक्षेप, संवाद तथा आर्थिक परस्पर-पूरकता के सिद्धान्तों पर आधारित है। यूरोपीय संघ अधिराष्ट्रीय एकीकरण का सर्वोच्च उदाहरण है, जिसने एकल बाज़ार, साझा मुद्रा तथा एकीकृत विधिक ढाँचे की स्थापना कर क्षेत्रीय तथा वैश्विक शासन-व्यवस्था को नई दिशा प्रदान की है।

ब्रिक्स, प्रमुख उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं के एक समूह के रूप में, वैश्विक दक्षिण की बढ़ती हुई सशक्त उपस्थिति को प्रदर्शित करता है। नव विकास बैंक तथा आकस्मिक आरक्षित व्यवस्था जैसी संस्थाओं के माध्यम से यह वैश्विक वित्त व्यवस्था को अधिक समावेशी तथा विकासोन्मुख बनाने का प्रयास करता है।

बीस देशों के समूह का इक्कीस देशों के समूह में रूपान्तरण, अफ्रीकी संघ को स्थायी सदस्य के रूप में सम्मिलित किए जाने के कारण, वैश्विक आर्थिक शासन के लोकतंत्रीकरण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि सिद्ध हुआ। इस परिवर्तन ने इस समूह को सतत विकास, व्यापक आर्थिक विनियमन तथा न्यायसंगत विकास के समन्वय के लिए एक वास्तविक वैश्विक और प्रतिनिधिक मंच बना दिया।

तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यद्यपि संरचनात्मक तथा प्रक्रियागत स्तर पर भिन्नताएँ विद्यमान हैं—दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्रों के संगठन की लचीली सर्वसम्मति पद्धति से लेकर यूरोपीय संघ के नियम-आधारित एकीकरण तक—फिर भी सभी क्षेत्रीय संगठन सामूहिक सुदृढ़ता, समावेशी समृद्धि तथा बहुपक्षीय समस्या-समाधान के प्रति समान रूप से प्रतिबद्ध हैं। समष्टिगत रूप से दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्रों का संगठन, यूरोपीय संघ, ब्रिक्स तथा इक्कीस देशों का समूह यह स्पष्ट करते हैं कि क्षेत्रीय सहयोग ही वैश्विक शासन की आधारशिला है। ये सभी संयुक्त रूप से शान्ति, व्यापार, सतत विकास तथा संवाद और पारस्परिक निर्भरता पर आधारित अधिक संतुलित बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था को प्रोत्साहित करते हैं।

4.9 शब्दावली

- 1 **क्षेत्रीयता** — समान आर्थिक, राजनीतिक अथवा सुरक्षा सम्बन्धी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पड़ोसी अथवा समान विचारधारा वाले देशों के मध्य सहयोग।

- 2. **बहुध्रुवीयता** — ऐसी वैश्विक व्यवस्था जिसमें शक्ति एक या दो महाशक्तियों के प्रभुत्व में न होकर अनेक प्रमुख देशों अथवा उनके समूहों में विभाजित रहती है।

- 3. **दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्रों के संगठन की कार्यपद्धति** — परामर्श, सर्वसम्मति तथा सदस्य देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने के सिद्धान्त पर आधारित निर्णय-प्रक्रिया।

- 4. **अधिराष्ट्रीयता** — राष्ट्रीय शासन से अधिकारों का स्थानान्तरण किसी स्वतंत्र क्षेत्रीय निकाय को करना, जो सदस्य देशों पर अधिकार का प्रयोग करता है।

- 5. **दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्रों का समुदाय** — तीन स्तम्भों—राजनीतिक एवं सुरक्षा, आर्थिक तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक—पर आधारित ऐसी व्यवस्था जिसका उद्देश्य दक्षिण-पूर्व एशिया में एकता तथा साझा पहचान का निर्माण करना है।

- **नव विकास बैंक** — ब्रिक्स द्वारा स्थापित बहुपक्षीय वित्तीय संस्था, जिसका उद्देश्य उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में आधारभूत संरचना तथा सतत विकास परियोजनाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करना है।

- **आकस्मिक आरक्षित व्यवस्था** — ब्रिक्स की ऐसी वित्तीय व्यवस्था, जिसका उद्देश्य सदस्य देशों को अल्पकालिक भुगतान-संतुलन सम्बन्धी सहायता उपलब्ध कराना है

- **जी21 (वैश्विक आर्थिक मंच)** - अफ्रीकी संघ की सदस्यता के बाद विस्तारित जी20, जो अंतरराष्ट्रीय आर्थिक सहयोग के प्रमुख मंच के रूप में कार्य करता है।

- **आसियान केंद्रीयता-** वह मार्गदर्शक सिद्धांत जिसके अनुसार हिंद-प्रशांत क्षेत्र में क्षेत्रीय सहयोग का केंद्र आसियान बना रहता है तथा बहुपक्षीय व्यवस्थाओं का मार्गदर्शन करता है।
- **वैश्विक शासन**- राष्ट्रों, क्षेत्रीय संगठनों तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के बीच सहयोग के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय समस्याओं का सामूहिक प्रबंधन।
- **दक्षिण-दक्षिण सहयोग**- वैश्विक दक्षिण के विकासशील देशों के बीच परस्पर विकास, प्रौद्योगिकी साझेदारी तथा राजनीतिक एकजुटता के उद्देश्य से किया जाने वाला सहयोग।

4.10 अभ्यास प्रश्न

अ. अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आसियान की स्थापना कब और कहाँ हुई थी?
2. ब्रिक्स के छह मूल तथा वर्तमान सदस्य देशों के नाम लिखिए।
3. आसियान पद्धति से क्या अभिप्राय है?
4. वर्ष 2023 में कौन-सी प्रमुख अफ्रीकी संस्था जी21 की स्थायी सदस्य बनी?
5. आसियान समुदाय के तीन प्रमुख स्तंभ कौन-कौन से हैं?
6. नवीन विकास बैंक का मुख्यालय कहाँ स्थित है?
7. क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी का पूर्ण रूप लिखिए।
8. बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था से क्या अभिप्राय है?

ब. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. बैंकॉक घोषणा में उल्लिखित आसियान के प्रमुख उद्देश्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. ब्रिक्स सहयोग को सक्षम बनाने वाली संस्थागत व्यवस्थाओं की विवेचना कीजिए।
3. G 21 के प्रमुख कार्यों तथा कार्यप्रणाली पर प्रकाश डालिए।
4. आसियान के भीतर आर्थिक एकीकरण की प्रक्रिया का परीक्षण कीजिए।
5. हिंद-प्रशांत क्षेत्र में आसियान केंद्रीयता के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
6. शांति तथा सतत विकास को बढ़ावा देने में क्षेत्रीय संगठनों की भूमिका का वर्णन कीजिए।

ग. दीर्घ उत्तरीय / निबंधात्मक प्रश्न

1. आसियान, यूरोपीय संघ, ब्रिक्स तथा जी-21 की संस्थागत संरचनाओं एवं निर्णय-निर्माण प्रक्रियाओं का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।
2. "क्षेत्रीय सहयोग वैश्विक शासन की आधारशिला है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
3. दक्षिण-दक्षिण सहयोग को बढ़ावा देने तथा वैश्विक वित्तीय संस्थानों में सुधार लाने में ब्रिक्स के योगदान का समालोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

4. समावेशी तथा न्यायसंगत वैश्विक शासन की दिशा में जी-20 का जी-21 में रूपांतरण किस सीमा तक एक महत्त्वपूर्ण कदम है? इसका मूल्यांकन कीजिए।
5. विश्लेषण कीजिए कि इक्कीसवीं शताब्दी में क्षेत्रीय संगठन किस प्रकार राज्य की संप्रभुता तथा वैश्विक परस्पर निर्भरता के बीच संतुलन स्थापित करने में सहायता करते हैं।

4.11 संदर्भ ग्रंथ

1. Ciorciari, J. D. (2017). ASEAN and the Great Powers. Contemporary Southeast Asia, 39(2), 252–258. http://www.jstor.org/stable/44683766
2. Natalegawa, R. M. M. M. (2017). The Expansion of ASEAN and the Changing Dynamics of Southeast Asia. Contemporary Southeast Asia, 39(2), 232–238. http://www.jstor.org/stable/44683763
3. Schmidt, V. A. (2011). Small Countries, Big Countries under Conditions of Europeanisation and Globalisation. In U. Becker (Ed.), The Changing Political Economies of Small West European Countries (pp. 149–172). Amsterdam University Press. http://www.jstor.org/stable/j.ctt46mwc0.9
4. Sachdeva, G. (2022). India as the Voice of the Global South in G20, 2023. Indian Foreign Affairs Journal, 17(3/4), 133–145. https://www.jstor.org/stable/4877250559
5. David, S. (2022). India's G20 Presidency: From Vision to Legacy. Indian Foreign Affairs Journal, 17(3/4), 158–169. https://www.jstor.org/stable/48772507

NOTES

20CUS01652